

1.	वेद गानम् एक परिचय	5
2.	श्रीपाद दामोदर सातवेलेकर जी सोलहवें वेद व्याख्यान पर आधारित	6
3.	संहिता पाठ की पद्धति ।.....	6
4.	मंत्र का व्युत्क्रम आर सरल पाठ ।	6
5.	अर्धर्चपाठः ।.....	7
6.	पदों को चर्चा.....	7
7.	पद पाठ की भिन्नता ।	7
8.	पदों की तीसरी विशेषता	8
9.	पदों की चर्चा.....	8
10.	व्युत्क्रम पद पाठ ।.....	8
11.	गायत्री मन्त्र का सीधा पद पाठ यह है ।	8
12.	इसी वेदमन्त्र का व्युत्क्रम पद पाठ यह है ।	8
13.	मन्त्र पाठ	9
14.	पद पाठ.....	9
15.	व्युत्क्रम पाठ.....	9
16.	मण्डूकप्लुत पद पाठ	9
17.	क्रम पाठ	9
18.	पञ्च संधि.....	9
19.	माला पाठ के २५ भेद	9
20.	रथ पाठ के ११ भेद	10
21.	आज वेदों की सुरक्षा कैसी हो?	10
22.	अष्टौ विकृतयः.....	10
23.	संहिता मन्त्र	10
24.	पदच्छेदपूर्वको मन्त्र पाठः	10
25.	पदसंहितालक्षणम्	10
26.	पदविच्छेदोऽसंहितः । (प्रातिशाख्येसूत्रे कात्यायनः) सुप्तिङन्तं पदं (अष्टा.).....	10
27.	पद पाठ.....	10
28.	क्रम लक्षणम्.....	10
29.	क्रम पाठः	10
30.	जटा पाठ विकृति लक्षणानि	10
31.	जटा प्रथमं लक्षणम्	10
32.	द्वितीयं जटालक्षणम्	11
33.	जटा लक्षणम्.....	11
34.	जटा	11
35.	जटा पाठः.....	11
36.	माला.....	11
37.	क्रम माला लक्षणम्.....	11
38.	क्रम माला.....	11
39.	क्रम माला.....	11
40.	पुष्प माला.....	12
	पुष्प माला लक्षणम्	12
41.	शिखा लक्षणम्.....	12
42.	रेखा पाठ.....	13
	पूर्वार्धस्य	13

	पदद्वयं.....	13
	पदत्रयं.....	13
	पदचतुष्कं	13
	उत्तरार्धस्य	13
	पदद्वयं.....	13
	पदत्रयं.....	13
	पदचतुष्कं	13
	यद्वासर्वस्य मन्त्रस्य	13
	पदद्वयं.....	13
	पदत्रयं.....	13
	पदचतुष्कं	13
	पदपञ्चकं	13
	पदषट्कं.....	13
	पदसप्तकम्	13
43.	ध्वज लक्षणम्	13
	अत्र विशेषः ।.....	14
44.	दण्डपाठः.....	14
	दण्ड लक्षणम्.....	14
	पूर्वार्धस्य	14
	उत्तरार्धस्य	14
45.	रथः	14
	रथः लक्षणम्.....	14
	द्वि चक्री रथः (अर्धचर्चशः).....	14
46.	द्वि चक्री रथः.....	15
	द्वि चक्री रथः प्रथमः प्रकारो	15
47.	द्विचक्री रथः द्वितीयः प्रकारो	16
48.	त्रिचक्री रथः.....	16
49.	चतुश्चक्री रथः.....	16
50.	घनः.....	17
	प्रथमं घन लक्षणम्.....	17
	पूर्वार्धस्य (अन्तादापर्यन्तम्)	17
	पूर्वार्धस्य (आदितोऽन्तपर्यन्तम्).....	17
	उत्तरार्धस्य (अन्तादापर्यन्तम्)	17
	उत्तरार्धस्य (आदितोऽन्तपर्यन्तम्)	17
	द्वितीयं घन लक्षणम्.....	17
51.	घनः पाठः.....	17

प्रथमोऽर्धः.....	17
द्वितीयोऽर्धः.....	17
52. पञ्चसन्धियुक्तो घनपाठः.....	18
घनवल्लभः.....	18
53. पञ्च सन्धियुक्तो जटा पाठः.....	18
54. अंकीय क्रम के आधार पर विकृति पाठों में पद का स्थान	18
संहिता पाठ	18
सक्रम पद पाठ	18
व्युत्क्रम पद पाठ	18
सक्रम क्रम पाठ	18
व्युत्क्रम क्रम पाठ.....	18
जटा पाठ (पद क्रम)	18
घन पाठ पद क्रम	18
पञ्च सन्धि पाठ (पद क्रम)	19
पुष्प माला पाठ (पद क्रम).....	19
क्रम माला पाठ (पद क्रम)	19
शिखा पाठ (पद क्रम)	19
रेखा पाठ (पद क्रम)	19
ध्वज पाठ (पद क्रम)	19
दण्ड पाठ (पद क्रम).....	19
रथ पाठ (पद क्रम)	19
55. ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं युजस्यं देवमृत्विजम् । ऋग्वेद १.१.१	19
56. ओ३म् अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रैर्भिरासुया । ऋग्वेद १.२०.१	19
57. ओ३म् ओषधयः सं वदन्ते सोमैर्न सह राज्ञां । ऋग्वेद १०.९७.२२	20
58. ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि । यजुर्वेद ३.३५	22
59. ओ३म् नमः शम्भवाय च । यजुर्वेद १६.४१	26
60. ओ३म् सदसि सी दैता । यजुर्वेद तैत्तरीय १.१.११.२	26
संहिता पाठ उदात्त अनुदात्त पाठ	26
घन पाठ.....	26
61. ओ३म् नमस्ताराय नम शम्भवे च । यजुर्वेद तैत्तरीय ४.५.८.१	27
संहिता पाठ उदात्त अनुदात्त पाठ	27
घन पाठ.....	27
62. संहिता पाठ	27
63. वेद गानम् वर्तमान साहित्य में उपलब्धता	27
64. प्रातिशाख्य	28
प्रातिशाख्यों का विषयः.....	29
उपलब्ध प्रातिशाख्यः	29
तैत्तिरीय प्रातिशाख्य	29
शौनकाचार्यकृत ऋग्वेद प्रातिशाख्य	29
कात्यायनाचार्य कृत वाजसनेयि प्रातिशाख्य	29
तैत्तिरीय प्रातिशाख्य	29
अथर्ववेद प्रातिशाख्य अथवा शौनकीय चतुराध्यायिका	29
65. शुद्ध वेदपाठ के कुछ नियम	30

66.	पद पाठ.....	31
67.	पद पाठ के नियम.....	31
	सन्धिविच्छेद.....	31
	अवग्रह का प्रयोग	31
	इतिकरण	32
	इतिकरण के साथ पद का पुनरावर्तन	32
	स्वर परिवर्तन.....	32
	स्वर परिवर्तन के सामान्य नियम.....	33
68.	पद पाठ के नियम पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक रचित वैदिक स्वर मीमांसा अंश.....	33
	वेदमन्त्र के संहिता पाठ को पदपाठ	33
	पद पाठ में व्यवहार्य संज्ञाएँ	34
	प्रगृह्य संज्ञा-निम्न पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है ।.....	34
69.	संहितापाठ से पदपाठ	35
	पद सम्बन्धी सामान्य नियम इस प्रकार है ।.....	35
	पदस्वर सम्बन्धी नियम संहितापाठ में वर्तमान स्वरों को पदपाठ में इस प्रकार परिवर्तित करना चाहिए ।.....	35
	प्रगृह्य सम्बन्धी नियम प्रगृह्य संज्ञक पदों को पदपाठ में निम्न नियमों के अनुसार दिखाना चाहिए ।	35
	रिफित सम्बन्धी नियम.....	35
	अवग्रह सम्बन्धी नियम	36
	उपसंहार	37
70.	वैदिक वर्ण और स्वर	37
	वैदिक वर्ण और स्वर	37
	स्वर	38
	उदात्त	38
	अनुदात्त	38
	स्वरित.....	38
	प्रचय.....	39
71.	वैदिक स्वर प्रक्रिया	40
	संज्ञा शब्दों में उदात्त	40
	समासिक पदों में उदात्त	41
	वाक्य में उदात्त.....	41
	उपसर्गों में उदात्त	41
	पद में दो उदात्त.....	41
	सर्वानुदात्त या उदात्त रहित पद	41
72.	सामवेद एक परिचय	41
	सामवेद में मन्त्रों की संख्या.....	42
	सामवेद की कौथुमीय शाखा उत्तरार्चिक	42
	सामवेद का वाङ्मय.....	42
	सामगान के प्रकार (स्थान की दृष्टि से)	42
	सामवेद के अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु ।.....	42
	सामवेद का प्रथम मन्त्र निम्न है ।.....	42
	सामवेद स्वर परिचय	43
	ऋक् - साम के सम्बन्ध की मीमांसा	43
	सामवेद में छन्द	44
	सामविकार	44

क्रम से सामविकारों को समझते हैं।.....44

सामवेद में सामगान के मन्त्रों के भाग44

सामवेद सामगान में मन्त्र के भाग45

सामगान45

सामगान की स्वरलिपि45

1. वेद गानम् एक परिचय

जब कोई विशेष यज्ञ या संस्कार करना हो तो पवित्रीकरण आचमन स्वस्तिवाचनम् व शान्ति प्रकरण भी कर लेना चाहिए और उसके उपरान्त पूर्णाहुति से पहले तक का दैनिक यज्ञ पहले करना चाहिए। फिर संस्कार का प्रधान यज्ञ कर, गायत्री मंत्रों से आहुति दे कर पूर्णाहुति करनी चाहिए। सभी क्रियाएं मन्त्र उच्चारण करने के उपरान्त करते हैं। मन्त्र के माध्यम से किया जाने वाला क्रिया कलाप व विचार यज्ञ पर केन्द्रित होने चाहियें। ब्रह्म यज्ञ करते समय दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर व देव अर्थात् साकल्य यज्ञ करते समय दृष्टि अग्नि की धाराओं पर होनी चाहिए। वेद मन्त्रों का त्रुटि रहित पाठ करने के लिए वेद मन्त्र उच्चारण पुस्तिका अवश्य पढ़ें। क्रिया करते समय भावना भाषार्थ अनुकूल पवित्र रखें। परमात्मा जिस भाषा में मानव के कर्म अन्तःकरण में लेखनीबद्ध करता है। उन्हें चित्त की वृत्तियां कहते हैं। और वह अन्तःकरणी भावना के रूप में उपजती रहती हैं।

वेद गान के भिन्न भिन्न प्रकार हैं। पंडित दामोदर सातवेलेकर जी के सोलहवें वेद व्याख्यान को प्रमाणित मान करके विभिन्न पाठों का निर्माण करने का यह एक प्रयत्न है उन्होंने अपने सोलहवें वेद व्याख्यान में संहिता पाठ, पद पाठ सक्रम, पद पाठ व्युत्क्रम, क्रम पाठ सक्रम, क्रम पाठ व्युत्क्रम, पञ्च च संधि पाठ, जटा पाठ, शिखा पाठ, क्रम पाठ, पञ्च सन्धि क्रम पाठ, पञ्च च संधि जटा पाठ, पुष्प माला पाठ, क्रम माला पाठ, रेखा पाठ, सर्वस्य मन्त्रस्य रेखा पाठ, दण्ड, ध्वज, रथ पाठ, द्वि चक्री पाठ, त्रि चक्री पाठ, चतुष चक्री रथ पाठ। कहीं कहीं पर अनुस्वार के परिवर्तन को उसके शब्द न् म् ण् ज् इ रूप में ही दर्शाया गया है। यजुर्वेद में अधिकतर परसवर्ण सन्धि: का प्रयोग होता है किसी अक्षर के अंतिम शब्द को अनुस्वार में परिवर्तित न करके उसके नासिक्य न् म् ण् ज् इ रूप में लिपिबद्ध किया जाता है। ऋग्वेद में अनुस्वार को दोनों प्रकार से लिपिबद्ध किया जाता है। सामवेद के मन्त्रों पर जो ँँ आदि संख्या डली हुई है, ये अङ्क क्रमशः संख्याएँ उदात्त, स्वरित और अनुदात्त के चिह्न हैं। ऋग्वेद आदि अन्य वेदों में अनुदात्त का चिह्न नीचे रेखा से उसके लिए सामवेद में अंक ँँ ऋग्वेद आदि अन्य वेदों में स्वरित का चिह्न। रेखा से सामवेद में अंक ँँ ऋग्वेद आदि अन्य वेदों में उदात्त पर कोई चिह्न नहीं होता वह सामवेद में ँँ दिखाया जाता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब वेदमन्त्रों का गान गाते थे तो एक पंक्ति में सिंहराज, एक पंक्ति में मृगराज, एक पंक्ति में सृपराज एक पंक्ति में नाना पशु पक्षी और एक पंक्ति में शिष्यगण विद्यमान हो करके उस गान को श्रवण करते थे।

पूज्यपाद गुरुदेव ने वेदों के विषय में इतना उच्चारण किया है कि जिसे सहस्रों पृष्ठों में लिपिबद्ध करना भी कठिन है। पूज्यपाद गुरुदेव वेद पाठ करते समय संस्कृत व देवनागरी भाषा में प्रवचन करते समय शब्दों को इतनी उत्तमता से उच्चारण करते हैं कि जिसको शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनकी उच्चारण ध्वनि में आप शब्द के अन्तर्गत प्रत्येक अक्षर को जैसे स्वर, स्वर सहित व्यञ्जन, स्वर रहित व्यञ्जन, अनुस्वार व वैदिक ध्वनि उच्चारण चिह्न इत्यादि को पृथक पृथक अनुभव कर सकते हैं। दो शब्दों के मध्य में अंतराल को भी आप भिन्न भिन्न अनुभव कर सकते हैं।

जैसे ज्ञ देवनागरी वर्णमाला में 'ज्' और 'ज' के योग से इसी तरह क्ष 'क्' व 'ष' बना हुए अक्षर है।

वेद पाठ करते समय अंतराल को अवश्य ध्यान रखें। जैसे इदन्न मम्, ही बोलें इदन्नमम् सही उच्चारण नहीं है। मन्त्र उच्चारण करते समय शब्द ध्वनि, उनके अन्तराल व स्वरों का बोध उन श्रोताओं व स्वयं को अवश्य ही होना चाहिए जो ध्यान पूर्वक श्रवण कर रहे हैं। प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में ओ३म् रूपी सूत्र अवश्य ही उच्चारण करें।

वेद का उच्चारण, वाचन, पठन पाठन व गान गाने वालों को संस्कृत की वर्णमाला, जो कि स्वर, व्यञ्जन, अनुस्वार व वैदिक ध्वनि उच्चारण चिह्न मिलकर बनी है, वेद पाठ के लिये सही उच्चारण का ज्ञान अवश्य ही होना चाहिए।

वेद गायन ध्वनि व समय अन्तराल की दृष्टि से

ह्रस्व अल्पकालीन स्वर है। इसका उच्चारण एक मात्रिक होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी एक बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण करना चाहिए। दीर्घ लिंबे समय तक का उच्चारण द्विमात्रिक होता है अर्थात् जितने समय में कलाई की नाड़ी दो बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण करना चाहिए। प्लुत अधिक लिंबे समय तक इसका उच्चारण त्रिमात्रिक होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी तीन बार धड़कती है उतने समय तक उच्चारण करना चाहिए। जैसे ओ३म्। जो शब्द जैसे लिखा हो उसे वैसा ही बोलें।

वेद पाठ की गायन शैली की परम्परागत वैदिक विद्यालयों में धैर्य और कठिन परिश्रम के साथ विद्या प्राप्त की जा सकती है।

वेद गान के भिन्न भिन्न प्रकार हैं। पंडित दामोदर सातवेलेकर जी के सोलहवें वेद व्याख्यान को प्रमाणित मान करके विभिन्न पाठों का निर्माण करने का यह एक प्रयत्न है। जिसमें उन्होंने पच्चीस प्रकार के पाठों का वर्णन किया है जैसे संहिता पाठ, उदात्त अनुदात्त पाठ, सक्रम पद पाठ, व्युत्क्रम पद पाठ, क्रम पाठ, जटा पाठ, घन पाठ, शिखा पाठ, पञ्च सन्धि पाठ, माला पाठ, क्रम माला पाठ, ध्वज पाठ, दण्ड पाठ, रेखा पाठ, द्वि चक्री रथ पाठ इत्यादि।

सामवेद में आरण्यं गानम्, ग्राम गानम्, उह गान व उह्य गान भी गाया जाता है।

कृष्णदत्त जी श्रुङ्गी ऋषि महाराज द्वारा कुछ अन्य पाठ भी वर्णित किए गए हैं। कृतिकि पाठ, विसर्ग पाठ, मधु पाठ, उदात्त अनुदात्त, माला पाठ। मल्हार गान व दीपमालिका गान आदि के गायन करने वाले अभी समाज के स्तर पर प्राप्त नहीं होते क्योंकि यह विद्या प्राणों के परस्पर मिलान करने से ही सिद्ध होती है। जो कि हिमालय की कन्दराओं में आदि ऋषियों से प्राप्त की जा सकती हैं।

वेदों में स्वरों और छंदों, स्वर और व्यञ्जन सहित गायन की विद्या की मेरी जानकारी वैदिक छात्रों की दृष्टि में ही अभी प्रारम्भिक अवस्था में है यह लेख एक साधारण मानव के लिए सुलभ इस सूक्ष्म विषय की तकनीकी चर्चा करने के लिए बनाया जा रहा है।

पदों को संधि सहित या संधि रहित करने के उपरान्त पूर्ववर्ती शब्द के अन्तिम अंश के व परवर्ती शब्द के प्रथम अंश में शब्दों के स्थान परिवर्तन के कारण वैदिक व्याकरण की दृष्टि से उनमें परिवर्तन हो जाता है। वेद पाठ के अनुसार यह परिवर्तन अनुदात्त, उदात्त और स्वरित चिह्नों में भी आता है। इसे अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए।

महर्षि पाणिनी और महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इनके मुख्य मुख्य नियमों का समावेश किया है। इन्होंने इस पूर्ण समुद्र रुपी विज्ञान को जाना है।

आप अक्षर स्तर पर आये परिवर्तन को तो अभ्यस्त से स्वयं भी कर सकते हैं लेकिन स्वरों में आए परिवर्तन को आपको विद्यालय में आचार्यों से सीखना पड़ेगा।

2. श्रीपाद दामोदर सातवेलेकर जी सोलहवें वेद व्याख्यान पर आधारित

वेद की रक्षा की रक्षा का प्रश्न आज भी हमारे सामने है। पर आज केवल वेद के अक्षरों की सुरक्षा उतनी कठिन नहीं है, जितनी प्राचीनकाल में कठिन थी। आज एक बार अच्छा और शुद्ध कंपोज तैयार करके उसके स्टीरियो ब्लॉक्स बनवाये, अथवा उसी कंपोज से इलक्ट्रो के ब्लॉक्स बनवाये, किंवा छपने के पुस्तक के पन्नों से फोटोग्राफी की सहायता से 'ब्लाक' बनवाये, तो अक्षर ह्रस्व दीर्घ प्लुत उदात्तादि स्वर व्यंजन मात्रा, पद आदि की उत्तम सुरक्षा हो सकती है। आज जो युक्तियां हमारे पास हैं, उनके द्वारा यह सब हमारे लिये आसान है। सम्पूर्ण ऋग्वेद के ऐसे ब्लाक ५०,०००) रु० के व्यय से बन सकते हैं और शेष तीनों वेदों के ब्लाक भी इतने ही व्यय से हो सकते हैं। भाज इतना व्यय कोई नहीं करता है, यह वैदिक धर्मियों की उदासीनता का दोष है। पर चारों वेदों की रक्षाके लिये एक लाख रु. का व्यय करना कोई बड़ी भारी बात नहीं है।

स्वध्याय मण्डल ने शुद्ध वेद छापे हैं, और पृष्ठों के फोटो लेकर ब्लाक करवाने की मनीषा रखी है। हमारे पास इस कार्य के लिये ३०,०००) की रकम आ भी गयी है, पर यह अपूर्ण है इसलिये यह कार्य नहीं हो सका। इस विषय में कई लोग यह पूछते हैं कि, ब्लाकों में अशुद्धि रही, तो फिर क्या किया जायगा? इसका सरल उत्तर यह है कि, प्रथम पुस्तक शुद्ध होने पर ब्लाकों में अशुद्धि नहीं होगी। परन्तु मनुष्य की आंख हैं, यदि प्रयत्न करने पर भी ऋग्वेद के हजार ब्लाकों में से ४० ५० ब्लाकों में कुछ अशुद्धि प्रतीत हुई, तो उन ४० ५० ब्लाकों को तोड़कर, नये शुद्ध ब्लाक बनवाये जा सकते हैं। यह कोई ऐसी बात नहीं कि, जो न होने वाली है और वेद जैसे जगद्वन्ध धर्म पुस्तक की सुरक्षा के लिये ऐसा ही उपाय करना चाहिये। जो आज सहज ही से हो सकता है कोई करे या न करे, यह समझने न समझने की बात है। ऐसी सुविधा प्राचीन काल में नहीं थी। आज दूसरी भी एक सुविधा है, वह यह कि शुद्ध कंपोज करके उस पर हजारों ग्रन्थ जैसे आज छापे जा सकते हैं, वैसी बात प्राचीन समय में नहीं थी। एक एक ग्रन्थ हाथ से लिखने में तथा उसे शुद्ध करने में जो कष्ट होते थे, वे कल्पना से भी आज नहीं जाने जा सकते। ऐसे संकटों के समय में प्राचीन ऋषि मुनियों ने वेद की सुरक्षा की, यह कार्य उन्होंने कितने परिश्रमों से किया होगा, यह बात हर एक वैदिक धर्मी मनुष्य को आज भी जानने योग्य है। इस विषय में वेद की सुरक्षाके लिये प्राचीन ऋषियों ने कैसे यत्न किये थे, इस विषय में प्राचीन पुस्तकों में कुछ वचन मिले हैं, वे इस लेख द्वारा पाठकों के सम्मुख रखने हैं। इससे पाठकों को स्पष्ट रीति से पता लग जायगा कि, वेद रक्षा के लिये कितना प्रयत्न किया जाता था और वेद के अक्षरों की सुरक्षा कितनी मेहनत से ऋषियों ने की थी। देखिये

भगवान् संहितां प्राह, पदपाठं तु रावणः। बाभ्रव्यर्षिः क्रमं प्राह, जटां व्याडीरवोचत ॥१॥

मालापाठं वसिष्ठश्च, शिखापाठं भृगुर्व्याधात्। अष्टावक्रोऽकरोद्रेखां, विश्वामित्रोऽपठद् ध्वजम्।

दण्डं पराशरोऽवोचत्, कश्यपो रथमब्रवीत्। घनमत्रिर्मुनिः प्राह, विकृतीनामयं क्रमः ॥३॥

मधुशिक्षायां मधुसूदनमुनिः

"भगवान् ने वेदों की संहिता कही, रावण ने पद पाठ किया, बाभ्रव्य ऋषि ने क्रम पाठ का प्रचार किया, (१) जटा पाठ न्याडी ने शुरू किया, (२) वसिष्ठ ऋषि ने मालापाठ किया, (३) भृगु ऋषि ने शिखा पाठ शुरू (४) अष्टावक्र ऋषिने रेखापाठ की पद्धति शुरू की, (५) विश्वामित्र ऋषि ने ध्वज पाठ शुरू किया, (६) पराशर ऋषि ने दण्ड पाठ किया, (७) कश्यप ऋषि ने रथपाठ की प्रणाली शुरू की, (८) भत्रि मुनि ने घन पाठ शुरू किया। इस तरह संहिता, पद और क्रम के आश्रय से इन पाठ विकृतियोंके पाठोंकी प्रणाली इन आठ ऋषियों ने शुरू की। यह सब करने का कारण यही था कि, ऐसे पाठ होने से और पदों के आगे पीछे पठन होने से एक भी अक्षर आगे पीछे नहीं किया जा सकता। यदि अक्षरों का हेर फेर हो जाय, पद आगे पीछे बन जायगे, तो किसी न किसी समय इन विकृतियों के पाठों में वह हेर फेर करने वाला पकड़ा ही जायगा और उसकी निन्दा सब वेदपाठियों में हो जायगी। इस तरह वेद पाठकी रक्षाका यत्न इतने यत्नसे इन ऋषियों ने किया था।

3. संहिता पाठ की पद्धति।

संहिता पाठकी पद्धति भी एक विशेष पद्धति है, जो इस समय महाराष्ट्र में ही उत्तम रीति से प्रचलित है। यद्यपि यह लुप्तप्रायसी हो रही है, तथापि महाराष्ट्र में इस समय में भी दशग्रन्थी बनपाठी विद्वान् सौ डेढ सौ मिल सकते हैं। इतने विद्वान् अन्य प्रान्तोंमें नहीं हैं। ऋग्वेदको आमूलाग्र महाराष्ट्र के लिये भूषण है। पर यह भूषण आगेके ५० वर्षों में रहेगा, ऐसी भाशा हमें नहीं है।

4. मंत्र का व्युत्क्रम आर सरल पाठ।

संहिता पाठ में दो प्रकारका पाठ किया जाता है। एक सरल मंत्रों को कण्ठ करना और सरल क्रम से पढ़ना। यह तो सरल है और ऐसा मरल पाठ करने वाले बहुत मिलते भी है। परन्तु इसमें मंत्रों का व्युत्क्रम करनेवाले बहुतही थोड़े होते हैं। यह कार्य बड़ा कठिन है और मंत्रों की अच्छी उपस्थिति के बिना तथा विशेष स्मरण शक्ति के बिना

यह व्युत्क्रम, पाठ नहीं हो सकता ।

मंत्रों का सरल क्रमशः पाठ करने को 'संहितापाठ' कहते हैं, और मनो को विरुद्ध क्रम से बोलने को 'संहिता का किया, व्युत्क्रम पाठ' कहते हैं । जैसा ऋग्वेद के प्रथम सूक्तमें ९ मंत्र हैं, उनको १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ ऐसे क्रम से पाठ करने का नाम 'संहितापाठ' है और ९, ६, ७, ८, ५, ४, ३, २, १ ऐसे उलटे क्रम से पाठ करने का नाम 'संहिता का व्युत्क्रमपाठ' है । यह व्युत्क्रम पाठ बहुत ही अद्वितीय स्मरणशक्ति वाले ही कर सकते हैं । हर एक से यह कार्य नहीं हो सकता । एक सूक्त के मंत्र भी उलटे क्रम से बोलना सहज नहीं हैं, फिर अनुवाक्, अध्याय, मण्डल आदि के मंत्रों को उलटे क्रम से बोलना कितना कठिन होगा, इसका विचार विद्वान लोक ही कर सकते हैं । परन्तु हमने ऐसे व्युत्क्रम पाठी विद्वान देखे हैं और ऋग्वेद का मुद्रण जिस अद्वितीय विद्वान के अधिष्ठातृत्व में हो रहा है, वे वेदमूर्ति सखारामभटजी ऐसे ही उत्तम वेद के व्युत्क्रम पाठी विद्वान् हैं । सूक्त के सूक्त जैसे सरल क्रम से वे बोलते हैं, वैसे ही उलटे क्रम से भी विना प्रमाद किये बोलते हैं!!!

5. अर्धर्चपाठः ।

पाठ में और एक पद्धति है, आधा मंत्र एक बोले और अगला आधा मंत्र दूसरा बोले । ऐसा करने के समय पहिले का आधा मंत्र समाप्त होने के पूर्व ही दूसरे को अगले आधे मंत्र का प्रारम्भ करना होता है । इस तरह का पाठ करने के लिये आधे मंत्र एक एक छोड़कर स्मरण में रखने कण्ठ करने वाले इस समय महाराष्ट्रीय ही हैं । यह एक पड़ते हैं । बिना ऐसा स्मरण रहे, अगला चरण स्मरण नहीं हो सकता ।

इस तरह संहिता पाठ में क्रम और व्युत्क्रम तथा अर्धर्च । पाठ ये तीन प्रकार के पाठ भाज भी महाराष्ट्र में प्रचलित हैं । पद पाठ की पद्धति । मंत्रों का पदपाठ है, यह सब जानते हैं, परन्तु मंत्रपाठ और पद पाठ में थोडा हेर फेर भी है । जो ' पदसमूह' एक बार किसी पूर्व मंत्र में आया होता है, वह पद समूह फिर पद पाठ में नहीं बोला जाता । इसको 'गलित पदसमूह' कहते हैं । जिस समय वेद का पद पाठ बोला जाता है, उस समय इन दुवारा आये गलित पद समूहों को बोलते नहीं हैं ।

6. पदों को चर्चा

इस नियम को बड़ी सावधानी से स्मरण रखना पड़ता है । संहिता तो सब मंत्रों की यथा क्रम बोली जाती है, परन्तु पद पाठ में द्विरावृत्त अर्थात् दुबारा आया पद समूह बोला नहीं जाता । इससे एक लाभ यह होता है कि दुबारा, तिबारा कौन से पद कहां आये हैं, वे संपूर्ण संहिता में कितनी बार आ गये हैं, इसका स्मरण इस परिपाटी से सहज ही से होता है । इसलिये जो पदपाठी विद्वान होते हैं, उनको पुनरुक्त मंत्र भागों का पता उत्तम रीति से रहता है । पद पाठ में दूसरी एक विशेषता है । संहिता पाठ के, क्रम से, पद पाठ का क्रम, कचित् स्थान पर विभिन्न होता है, वहां कुछ व्युत्क्रमसा होता है, जैसे

7. पद पाठ की भिन्नता ।

संहिता पाठ	पद पाठ	क्रमांक
इन्द्रावरुण वामहं इन्द्रावरुणा ।	इन्द्रावरुण । वां । अहं ।	ऋग्वेद १.१७.७
न्याविध्यत् ।	नि । अविध्यत् ।	ऋग्वेद १.३३.१२
न्यावृणक् ।	नि । अवृणक् ।	ऋग्वेद १.१०१.२
अगादारैगु अगात् ।	अरैक् । उँ इति ।	ऋग्वेद १.११३.२
अभ्यादेवं ।	अभि । अदेवं ।	ऋग्वेद २.२२.४
आसता सचन्तां ।	असता । सचन्तां ।	ऋग्वेद ४.५.१४
शुनश्चित् शेषं ।	शुनःशेषं । चित् ।	ऋग्वेद ५.२.७
स्वधितिर्व ।	स्वधितिः । इव ।	ऋग्वेद ५.७.८
वरुणेळासु ।	वरुण । इळासु ।	ऋग्वेद ५.६२.५
वरुणेळासु ।	वरुणा । इळासु ।	ऋग्वेद ५.६२.६
इत्या देव ।	इत्या । देवा ।	ऋग्वेद ५.६७.१
धिष्ण्येमे ।	धिष्ण्ये इति । इमे इति ।	ऋग्वेद ७.७२.३
अश्वेषितं ।	अश्वऽइषितं ।	ऋग्वेद ८.४६.२८
रजेषितं ।	रजऽइषितं ।	ऋग्वेद ८.४६.२८
शुनेषितं ।	शुनाऽइषितं ।	ऋग्वेद ८.४६.२८
नकिरादेव ।	नकिः । अदेवः ।	ऋग्वेद ८.५९.२

षड्भूम्या ददे ।	सत् । भूमिः । आ । ददे ।	ऋग्वेद ६.६१.१०
बृहस्पते रवथेन ।	बृहस्पतेः । रवथेन ।	ऋग्वेद ९.८०.१
नरा च शंसं ।	नराशंसं । च ।	ऋग्वेद ९.८६.८२
नरा वा शंसं ।	नराशंसं । वा ।	ऋग्वेद १०.६४.३
चित्कंभनेन ।	चित् । स्कंभनेन ।	ऋग्वेद १०.६४.३

इस तरह वेदों में ऋचित् संहिता पाठ से पद पाठ भिन्न है, केवल व्याकरण से ही यह पद पाठ सिद्ध नहीं हो सकता । जो पाठक व्याकरण के नियम जानते होंगे, उनको कहने की आवश्यकता नहीं है कि, किस तरह यह पदपाठ भिन्न है । इसीलिये वैदिकों को संहिता पाठ के समान ही पदपाठ भी कण्ठ ही करना होता है । और वेदपाठी संहिता पाठ के समान पद पाठ को भी कण्ठ ही कर देते हैं ।

8. पदों की तीसरी विशेषता

पद पाठ की दो विशेषताएं पूर्वस्थान में बतायी है । (१) एक तो उस पद पाठ में कुछ पद नहीं रहते, जो द्विबार आते हैं, और (२) पदपाठ भिन्न भी होता है । (३) तीसरी विशेषता यह है कि संहिता पाठ से पद पाठ के स्वर भिन्न होते हैं । पद होते ही स्वर भेद होता है । इसलिये पद पाठ को उतने ही प्रयत्न से कण्ठ करना पड़ता है कि, जितने यत्न से संहिता को कण्ठ किया जाता है ।

9. पदों की चर्चा

पद पाठ कण्ठ होने के पश्चात् जैसी संहिता की चर्चा होती है, वैसी ही पद पाठ भी चर्चा होती है । चर्चा का अर्थ है मुखसे बोलना । मन्त्रकी चर्चा दो प्रकार की पूर्व स्थान में कही है । आमने सामने चर्चा करने वाले बैठते हैं, और एक संघ वाले एक मन्त्र बोलते हैं और दूसरे सामने वाले दूसरा बोलते हैं । अथवा आधा मन्त्र एक संघ के लोग बोलते हैं, और द्वितीयार्ध को दूसरे संघवाले बोलते हैं । इस तरह अध्यायों के अध्याय बिना प्रमाद किये बोलते हैं । इसमें इस बातकी कठिनता होती है कि, पहिले संघ का वाक्य समाप्त होने के पूर्व ही दूसरे संघ का प्रारम्भ होना चाहिये । आगे के मन्त्र का अथवा मन्त्रार्ध का प्रारम्भ करने योग्य मंत्रों का स्मरण रहना ही पाठ शक्ति की विशेषता है ।

इसी तरह पदों की चर्चा होती है । एक संघवाले एक पद बोलेंगे और दूसरा संघ दूसरा अगला पद बोलेंगे, परन्तु पहिलेका समाप्त होने से पहिले ही दूसरे को अपना पद बोलना चाहिये । इसके लिये एक पद छोड़कर दूसरा बोलने का अभ्यास का होना चाहिये । तब इस चर्चा में सफलता मिलती है । चर्चा कैसी बोली जाती है, यह देखिये

वेद पाठी विद्वानों का एक संघ	वेद पाठी विद्वानों का दूसरा संघ
तत् १	२ सवितः
वरेण्यं ३	४ भर्गः
देवस्य ५	६ धीमहि
धियः ७	८ यः
नः ९	१० प्रचोदयात्

इससे पता चल सकता है कि, इस चर्चा पठन पद्धति में हर एक को एक एक पद छोड़कर अगला पद बोलने की स्मरण शक्ति रहनी चाहिये । हमने ऐसे वेद राठी देखे हैं कि जो संपूर्ण संहिता का पद पाठ बीच के एक एक पद को त्याग कर बिना प्रमाद किये बोलते जाते हैं !! और ऐसे पदपाठी विद्वान् महाराष्ट्र में इस समय हैं । स्मरण रहे कि विशेष प्रयत्न के बिना और विशेष आयास करने के बिना यह पद पाठ इस तरह कण्ठ होना कठिन है ।

10. व्युत्क्रम पद पाठ ।

पद पाठ को भी व्युत्क्रम से अर्थात् उलटे क्रमसे बोलने वाले होते हैं । हमारे स्वाध्याय मण्डल के वे० मू० सखा राम भट्ट जी ऐसा उलटे क्रम से पद पाठ बोलते हैं । सम्पूर्ण ऋग्वेद का पद पाठ अन्त से आदि तक कहने वाला हमने और एक और वेद पाठी विद्वान् देखा था । वह चाहे संहिता के अन्त से चाहे किसी मण्डल के अन्त से चाहे किसी सूक्त के अन्त से मन्त्र तथा पद पाठ बिना प्रमाद किये बोलता था । इस समय वह गुजर चुका है । हमारे ही पितृ व्यकुल का वह वेद पाठी था । इसको छोड़कर तथा हमारे वेद मूर्ति सखा राम भट्ट जी को छोड़ कर ऐसा व्युत्क्रम पद पाठी हमने दूसरा नहीं देखा । बहुधा ऐसा वेद पाठी मिलना असम्भव ही है, क्योंकि विशेष स्मरण शक्ति न होने से यह होना सर्वथा असंभव है ।

11. गायत्री मन्त्र का सीधा पद पाठ यह है ।

तत् । सवितुः । वरेण्यं । भर्गः । देवस्य । धीमहि । धियः । यः । नः । प्रचोदयात् । प्रचोदयादिति प्र चोदयात् ॥

12. इसी वेदमन्त्र का व्युत्क्रम पद पाठ यह है ।

प्रचोदयात् । नः । यः । धियः । धीमहि । देवस्य । भर्गः । वरेण्यं । सवितुः । तत् ॥

गायत्री मन्त्र तो हर कोई जानता है, पर उसका उलटा पद पाठ बोलना कितना कठिन है, यह पाठक ही स्वयं देख सकते हैं । यदि एक मन्त्र का उलटा पद पाठ बोलना कठिन है, तब तो सूक्तों का उलटा पद पाठ बोलना तो इससे शत गुणा कठिन है, यह हर कोई जान सकता है और एक पद छोड़कर बोलते जाना तो उससे भी कठिन है । पर ऐसे विद्वान आज भी मिलते हैं व्युत्क्रम पाठी मिलना ही दुष्कर हुआ है, सरल पाठी तो इस समय भी हैं ।

इस समय तक जो विभिन्न पाठ बताये, उनको फिर दुहराते हैं ।

13. मन्त्र पाठ

अग्रे नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

14. पद पाठ

अग्रे । नय । सुपथा । राये । अस्मान् । विश्वानि । देव । वयुनानि । विद्वान् ।

15. व्युत्क्रम पाठ

विद्वान् । वयुनानि । देव । विश्वानि । अस्मान् । राये । सुपथा । नय । अग्रे ।

16. मण्डूकप्लुत पद पाठ

अग्रे । । सुपथा । । अस्मान् । ।

..... । नय । । राये । । विश्वानि ।

देव । । विद्वान् । ।

। । वयुनानि । ॥

यह पाठ पदों की चर्चा बोलने के समय बोला जाता है जो पूर्व स्थल में बताया जा चुका है । इस चर्चा में एक एक पद का त्याग करके अगला पद बोला जाता है । यह इतना जल्दी बोलते हैं कि उसका वर्णन ही नहीं हो सकता । एक संघ १,३,५,७,९ ये पद बोलेंगे और दूसरा संघ २,४,६,८ ये पद बोलेंगे । बीच गलित या पुनरुक्त पद छोड़ने होते हैं, सामासिक पद तोड़कर बोले जाते हैं जैसा रत्नधातमं इति रत्न धा तमं पुरोहितं इति पुरःहितं इ. ।

इसी तरह सब पद बोलते हैं और इतनी जल्दी में बोलते हुए एक भी गलती नहीं होती, यह आश्चर्य है!!!

इसके नंतर क्रम पाठ, जटा पाठ, माला पाठ, शिखा पाठ, रेखा पाठ, ध्वज पाठ, दण्ड पाठ, रथ पाठ, घन पाठ, ये नौ पाठ वेदमन्त्रों के पदों के सरल उलटे क्रम से होते हैं । क्रम पाठ के ही आश्रय से आगे के ८ भेद बनते हैं । इन सब पाठों में सबसे पूर्वोक्त संहिता तथा पद पाठ होने के पश्चात यही क्रम पाठ कण्ठ होता है । यह इस तरह होता है

17. क्रम पाठ

अग्रे नय । नय सुपथा । सुपथा राये । राये अस्मान् । अस्मान् विश्वानि । विश्वानि देव । देव वयुनानि । वयुनानि विद्वान् । विद्वानिति विद्वान् ॥

अन्तिम पद इति रखकर दो बार बोला जाता है ।

यही क्रम पाठ आगे के आठों विकृतियों का आधार है । यहां क्रम से दो दो पद बोले जाते हैं । उक्त स्थान क्रम पाठ और आठ विकृतियों के नाम दिये हैं । परन्तु प्रत्येक विकृति में कई भेद भी हैं ।

18. पञ्च संधि

उक्त विकृति बनने के लिए पञ्च संधि करने की अत्यन्त आवश्यकता होती है । पञ्च संधि किये बिना ठीक तरह विकृति बोलना असम्भव है । पञ्च संधि का नमूना यह है धियो यः । इन दो पदों के पञ्च संधि ऐसे होते हैं धियो यः । यो यः । यो धियः । धियो धियः । धियो यः ।

दो पदों का परस्पर व्यवहार पांच ही प्रकार से हो सकता है । वेद के प्रत्येक दो पदों का इस तरह संधि स्मरण रखना पड़ता है । इससे वेद का पद आगे पीछे कैसा भी हुआ, तो उसका ठीक ठीक संधि कैसा होता है, यह जाना जा सकता है । इसी कारण वेद का पद आगे पीछे न होता हुआ अपने स्थान पर सुरक्षित रहता है । पाठक इस प्रयत्न को ठीक तरह समझें ।

जटा पाठ में दो भेद हैं, ऐसा सरल जटा पाठ और दूसरा पञ्च संधि युक्त जटा पाठ ।

माला पाठ के दो भेद होते हैं, एक क्रम माला और दूसरी पुष्प माला । इसका पाठ विधि आगे बताया है । माला के और २५ भेद कहे हैं

अवसानाच्चावसानान्तं क्रमादुत्क्रमणं पठेत् । मालाख्यां विकृतिं धीमान् संहितायाः सदा पठेत् । पञ्चविंशत्यभेदां हि मालाख्यां विकृतिं विदुः । पञ्च विंशति भेदाश्च मालायाः संभवन्ति हि ॥

19. माला पाठ के २५ भेद

माला नामक वेदविकृति के २५ भेद होते हैं । जिनके नाम ये हैं ।

१, पद २ पदव्युत्क्रम, ३ क्रम, ४ जटा, ५ शिखा, ६ संहितापद, ७ संहिताक्रम, ८ संहिता जटा, ९ संहिता शिखा, १० पदक्रम, ११ पद जटा, १२ पद शिखा, १३ क्रम जटा, १४ क्रम शिखा, १५ जटा शिखा, १६ संहिता पद क्रम, १७ संहिता क्रम जटा, १८ संहिता जटा शिखा, १९ संहिता पद क्रम जटा, २० पद जटा शिखा, २१ क्रम जटा शिखा, २२ संहिता पद क्रम जटा, २३ संहिता क्रम जटा शिखा, २४ संहिता पद क्रम जटा शिखा, २५ माला । माला के दो भेद हमें मालूम हैं यहां २५ भेद लिखे हैं, इसका किसी को पता नहीं है । पाठ को में से किसी को अथवा किसी अन्य विद्वान को इन भेदों का विधि मालूम हो, अथवा किसी अन्य विद्वान को इन भेदों का विधि मालूम हो,

अथवा किसी के पास कोई ग्रन्थ प्राचीन लिखित हो, तो उसका पता हमें चाहिए। वल्ली नामक विकृति के इसी तरह २५ और भेद इसी लिखित ग्रन्थ में लिखे हैं। इनके नाम ग्रन्थ जीर्ण होने से हस्तगत नहीं हुए। इनका भी पता किसी को हो तो हम जानना चाहते हैं। रथ के विषय में निम्न लिखित पंक्तियां मिलती हैं

20. रथ पाठ के ११ भेद

वल्ल्याः क्रमः समाख्यातो जटाख्यातं पदद्वयम्। क्रमवत्क्रमणं कुर्यात् व्युत्क्रमं च पदे पदे। अनुलोमं जटातन्तुं विलोमं तु पृथक् पृथक्। रथाख्यां विकृतिं ब्रूयात् रथभेद प्रकथ्यन्ते। अनुलोमं जटातन्तुं प्रपठेद् पृथक् पृथक्। रथाख्यां विकृतिं धीमान् विलो रथस्यैकादशभेदा भवन्ति, ते तु विलोमेनैव जायन्ते।

यहां रथ के ११ भेद कहे हैं। हमे केवल द्विचक्री रथ, त्रिचक्री रथ, चतुश्चक्री रथ, मन्त्रद्वय रथ ये चार ही भेद मालूम हैं। कदाचित् मन्त्रत्रितय रथ, मन्त्र चतुष्करथ, और ऐसे और दो भेद हो सकते हैं, क्योंकि मन्त्र द्वयरथ के अनुसन्धान से ये और दो भेद होना सम्भव है, इस तरह ये छः भेद हुए। परन्तु उक्त श्लोक ११ भेद रथ के कहे हैं। उनका किसी को पता इस समय नहीं है। सम्भव है कि प्रत्येक रथ को पञ्च सन्धि युक्त कहने से ५ या ६ भेद अधिक होते होंगे। यह एक खोज का विषय है।

इस समय जो विकृति वैदिक विद्वान् बोलते हैं, उनको नमूने के तौर पर यहां दिया है। पाठक उनको देखकर जान सकते हैं कि प्राचीन ऋषि मुनियों ने वेद की सुरक्षा के लिए कितना महान् यत्न किया था। इसमें घन नामक जो विकृति है, उसमें द्वितीय पद से प्रत्येक पद आगे पीछे करके १३ बार बोला जाता है। सम्पूर्ण ऋग्वेद का इस तरह घन पाठ मुख से ही बोलने वाले, अर्थात् हाथ में ग्रन्थ न लेते हुए बोलने वाले वैदिक विद्वान् महाराष्ट्र में २० से २५ हैं। हमारे स्वाध्याय मण्डल में कार्य करने वाले श्री पण्डित वेद मूर्ति सखा राम भट्ट जी ऐसे ही घन पाठी विद्वान् हैं।

कई विद्वान् सम्पूर्ण वेद ऋग्वेद का घन पाठ का पारायण करते हैं, इस कार्य के लिए कई महीने आवश्यक होते हैं। यह जैसा परिश्रम का कार्य है, वैसा ही बुद्धिमत्ता का और उत्तम स्मरणशक्ति का भी कार्य है।

अस्तु प्राचीन ऋषि मुनियों ने वेद के पद पद सुरक्षित रखने के लिए इतने परिश्रम किये थे। इस समय में भी ऐसे परिश्रमी वेद वेत्ता महाराष्ट्र में हैं। किसी अन्य प्रान्त में नहीं हैं।

21. आज वेदों की सुरक्षा कैसी हो?

आज वेदों के ब्लाक बनवाये जायेंगे, तो वेद के अक्षरों की सुरक्षा हो सकती है। इस कार्य के लिए धन चाहिये। चारों वेदों के 2000 पृष्ठों के लिये कम से कम 100000 रुपये लगेंगे। वेद की सुरक्षा के लिये कौन यह धन देता है इस चिन्ता में हम हैं।

इन आठों विकृतियों के उदाहरण इसी स्थान में अगले पृष्ठों में पाठक देख सकते हैं।

22. अष्टौ विकृतयः

परः सन्निकर्षः संहिता (अष्टाध्यायां १.४.१०९ पाणिनिः) (वर्णानामतिशयितः संनिधिः संहिता संज्ञ स्यात्)

23. संहिता मन्त्र

ओ३म् ओषंध्यः संवदन्ते सोमैर्न सह राजां। यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तराजं न्यारयामसि ॥ ऋग्वेद १०.९७.२२

24. पदच्छेदपूर्वको मन्त्र पाठः

ओ३म् ओषंध्यः सं वदन्ते सोमैर्न सह राजां। यस्मै कृणोति ब्राह्मणस् तं राजन् पारयामसि ॥ ऋग्वेद १०.९७.२२

25. पदसंहितालक्षणम्

26. पदविच्छेदोऽसंहितः। (प्रतिशाख्ये सूत्रे कात्यायनः) सुप्तिङन्तं पदं (अष्टा.)

27. पद पाठ

ओ३म् ओषंध्यः। सं। वदन्ते। सोमैर्न। सह। राजां। यस्मै। कृणोति। ब्राह्मणः। तं। राजन्। पारयामसि ॥

28. क्रम लक्षणम्

क्रमेण पद द्वयस्य पाठः। क्रम पाठो योगरूढा संहिता इत्युच्यते। क्रमः स्मृतिप्रयोजनः (प्रा. सू. ४.१८ कात्यायनः क्रम पाठ लक्षणम् शौनकेनोक्तम्।

क्रमो द्वाभ्यामभिक्रम्य प्रत्यादायोत्तरं द्वयोः। उत्तरेणोपसंदध्यात्तथार्धर्चं समापयेत् ॥

29. क्रम पाठः

ओ३म् ओषंध्यः सं। सं वदन्ते। वदन्ते सोमैर्न। सोमैर्न सह। सह राजां। राजेति राजां ॥ यस्मै कृणोति। कृणोति ब्राह्मणः। ब्राह्मणस्तं। तं राजन्। राजन् पारयामसि।

पारयामसीति पारयामसि ॥

30. जटा पाठ विकृति लक्षणानि

प्रतीकात्मक चित्र (हमारे यहां कितनी गहराई तक पहले वेदपाठ का प्रचलन था)

शैशिरीये समाम्नाये व्यालिनैव १ महर्षिणा। जटाद्या विकृतीरष्टौ लक्षयन्ते नातिविस्तरम् ॥१॥

जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः। अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः ॥२॥

अष्टौ विकृतयः क्रमपूर्वा भवन्ति। तासु जटा दण्डसंज्ञ के द्वे विकृतो मुख्ये। यत विकृतयः संभवन्ति। तत्र जटां शिखाऽनुसरति। तथा च दण्डं माला रेखा ध्वज रथा अनुसरन्ति घनस्तु जटादण्डावनुसरति।

31. जटा प्रथमं लक्षणम्

अनुलोमाविलोमाभ्यां त्रिवारं हि पठेत् क्रमम्। विलोमे पदवत्संधिः अनुलोमे यथाक्रमम् ॥

32. द्वितीयं जटालक्षणम्

क्रमे यथोक्ते पदजातमेव द्विरभ्यसेदुत्तरमेव पूर्वम् । अभ्यस्य पूर्व च तथोत्तरे पदेऽवसानमेवं हि जटाभिधीयते ॥

33. जटा लक्षणम्

अनुलोमाविलोमाभ्यां त्रिवारं हि पठेत्क्रमम् । यथावत्स्वर संयुक्तं सा जटेत्यभिधीयते ॥

ब्रूयात्क्रमविपर्यासौ पुनश्च क्रममुत्तरम् । जटाख्यां विकृतिं धीमान् विज्ञाय क्रमलक्षणम् ।

34. जटा

अनुलोमः१ २+विलोमः२ १+अनुलोमः१ २ ॥ (क्रमः१ २+व्युत्क्रमः२ १+संक्रमः१ २)

35. जटा पाठः

१ २ २ १ १ २ । २ ३ ३ २ २ ३ । ३ ४ ४ ३ ३ ४ । ४ ५ ५ ४ ४ ५ । ५ ६ ६ ५ ५ ६ । ६ ६ ॥

७ ८ ८ ७ ७ ८ । ८ ९ ९ ८ ८ ९ । ९ १० १० ९ ९ १० । १० ११ ११ १० १० ११ । ११ १२ १२ ११ ११ १२ । १२ १२ ॥

ओ३म् ओषधयस् सं, समोषधय, ओषधयस् सम् । सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते । वदन्ते सोमैन्, सोमैन् वदन्ते, वदन्ते सोमैन् । सोमैन् सुह, सुह सोमैन्, सोमैन् सुह । सुह राज्ञा, राज्ञा सुह, सुह राज्ञा । राज्ञेति राज्ञा ॥

यस्मै कृणोति, कृणोति यस्मै, यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणो, ब्राह्मणः कृणोति, कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं, तं ब्राह्मणो, ब्राह्मणस्तं । तं राजन्, राजन्स्तं, तं राजन् । राजन्यारयामसि, पारयामसि राजन्, राजन्यारयामसि । पारयामसीति । पारयामसि ॥१॥

संहिता पाठ

ओ३म् ओषधयः सं वदन्ते सोमैन् सुह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस् तं राजन् पारयामसि ॥ ऋग्वेद १०.९७.२२

36. माला

माला द्वौ भेदौ पुष्प माला क्रम माला चेति । तत्र क्रम मालायाः लक्षणम्

37. क्रम माला लक्षणम्

ब्रूयात्क्रमविपर्यासावर्धर्चस्यादितोऽन्ततः । अन्तं चादिं नयेदेवं क्रमालेति गीयते ॥

अवसानाश्चावसानांतं क्रमादुत्क्रमणं भवेत् । जटाख्यां विकृतिं धीमान् संहितायाः सदा पठेत् ॥

पञ्चविंशति प्रभेदा वै मालाख्यां विकृतिं पठेत् । संहितादि शिखान्तं च अनुलोमविलोमतः ॥

आदितोऽन्ततश्चापि मालाख्यां विकृतिं पठेत् । पञ्चविंशति प्रभेदाश्च मालाया संभवन्ति ॥

मालायाश्च पुनर्भेदा कथिताः पञ्चविंशति ।

38. क्रम माला

१ २ । ६ ६ ॥ २ ३ । ६ ५ ॥ ३ ४ । ५ ४ ॥ ४ ५ । ४ । ३ ॥ ५ ६ । ३ २ ॥ ६ ६ ॥

२ १ । ७ ८ । १२ १२ ॥ ८ ९ । १२ ११ ॥ ९ १० । ११ १० ॥ १० ११ । १० ९ ॥ ११ १२ । ९ ८ ॥ १२ ११ ॥

ओषधयः सं । राज्ञेति राज्ञा ॥ सं वदन्ते । राज्ञा सुह ॥ वदन्ते सोमैन् । सुह सोमैन् ॥ सोमैन् सुह । सोमैन् वदन्ते ॥ सुह राज्ञा । वदन्ते सं ॥ राज्ञेति राज्ञा । समोषधयः ॥ यस्मै कृणोति ॥ पारयामसीति पारयामसि ॥

कृणोति ब्राह्मणः । पारयामसि राजन् ॥ ब्राह्मणस्तं राजन्स्तं ॥ तं राजन् । तं ब्राह्मणः ॥ राजन्यारयामसि ॥ ब्राह्मणः कृणोति ॥ पारयामसीति पारयामसि ॥ कृणोति यस्मै ॥

39. क्रम माला

क्रमांक	आदितोऽन्ततः	अन्तं चादिं नयेत्
१	ओषधयः सं ।	राज्ञेति राज्ञा ।
२	सं वदन्ते ।	राज्ञा सुह ।
३	वदन्ते सोमैन् ।	सुह सोमैन् ।
४	सोमैन् सुह ।	सोमैन् वदन्ते ।
५	सुह राज्ञा ।	वदन्ते सं ।
६	राज्ञेति राज्ञा ।	समोषधयः ।
७	यस्मै कृणोति ।	पारयामसीति पारयामसि ।
८	कृणोति ब्राह्मणः ।	पारयामसि राजन् ।

९	ब्राह्मणस्तं ।	राज्जस्तं ।
१०	तं राजन् ।	तं ब्राह्मणः ।
११	राजन्पारयामसि ।	ब्राह्मणः कृणोति ।
१२	पारयामसीति पारयामसि ।	कृणोति यस्मै ।

40. पुष्प माला

पुष्प माला लक्षणम्

माला मालेव पुष्पाणां पदानां ग्रन्थिनी हि सा । आवर्तन्ते त्रयस्तस्यां क्रमव्युत्क्रमसंक्रमा ॥

जटावदेव पुष्प माला भवति । तत्र प्रतिपदं विराम इतिकारश्चेति विशेषः । केचिच्च पुष्पमालायामितिकारं पद सन्धिस्थानेऽपि वदन्ति । यथा "समोषधय" इति सम् ओषधयः । "ब्राह्मणस्तं" इति ब्राह्मणः तम् । "राज्जस्तं" इति राजन् तम् । इत्यादि ।

क्रमांक	(क्रमः) विरामः	(व्युत्क्रमः) विरामः	(संक्रमः)	इति । (विराम)
१	ओषधयः सं	समोषधयः	ओषधयः सं	इति । (विराम)
२	सं वदन्ते	वदन्ते सं	सं वदन्ते	इति । (विराम)
३	वदन्ते सोमैन	सोमैन वदन्ते	वदन्ते सोमैन	इति । (विराम)
४	सोमैन सुह	सुह सोमैन	सोमैन सुह	इति । (विराम)
५	सुह राज्ञां	राज्ञां सुह	सुह राज्ञां	इति । (विराम)
६	राज्ञेति राज्ञां			
७	यस्मै कृणोति	कृणोति यस्मै	यस्मै कृणोति	इति । (विराम)
८	कृणोति ब्राह्मणः	ब्राह्मणः कृणोति	कृणोति ब्राह्मणः	इति । (विराम)
९	ब्राह्मणस्तं	तं ब्राह्मणः	ब्राह्मणस्तं	इति । (विराम)
१०	तं राजन्	राज्जस्तं	तं राजन्	इति । (विराम)
११	राजन्पारयामसि	पारयामसि राजन्	राजन्पारयामसि	इति । (विराम)
१२	पारयामसीति पारयामसि ।			

41. शिखा लक्षणम्

पदोत्तरां जटामेव शिखामार्याः प्रचक्षते ।

ओ३म् ओषधयस् सं, समोषधय, ओषधयस् सम्, वदन्ते ।

सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते, सोमैन ।

वदन्ते सोमैन, सोमैन वदन्ते, वदन्ते सोमैन, सुह ।

सोमैन सुह, सुह सोमैन, सोमैन सुह, राज्ञां ।

सुह राज्ञा, राज्ञां सुह, सुह राज्ञां ।

राज्ञेति राज्ञां ॥

यस्मै कृणोति, कृणोति यस्मै, यस्मै कृणोति, ब्राह्मणः ।

कृणोति ब्राह्मणो, ब्राह्मणः कृणोति, कृणोति ब्राह्मणस, तम् ।

ब्राह्मणस्तं, तं ब्राह्मणो, ब्राह्मणस्तं, राजन् ।

तं राजन्, राज्जस्तं, तं राजन्, पारयामसि ।

राजन्पारयामसि, पारयामसि राजन्, राजन् पारयामसि ।

पारयामसीति । पारयामसि ॥

42. रेखा पाठ

रेखा लक्षणम् ।

क्रमाद् द्वित्रिचतुष्पञ्चपदक्रममुदाहरेत् । पृथक्पृथग्विपर्यस्य लेखामाहुः पुनः क्रमात् ॥

पूर्वार्धस्य

पदद्वयं

ओ३म् ओषंधयः सं । समोषंधयः । ओषंधयः सं ॥

पदत्रयं

सं वदन्ते सोमैन । सोमैन वदन्ते सं । सं वदन्ते ॥

पदचतुष्कं

वदन्ते सोमैन सुह राजां । राजां सुह सोमैन वदन्ते । वदन्ते सोमैन ॥

सोमैन सुह । सुह राजां । राज्ञेति राजां ॥

उत्तरार्धस्य

पदद्वयं

यस्मै कृणोति । कृणोति यस्मै । यस्मै कृणोति ॥

पदत्रयं

कृणोति ब्राह्मणस्तं । तं ब्राह्मणः कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः ।

पदचतुष्कं

ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि । पारयामसि राजंस्तं ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं ।

तं राजन् । राजन् पारयामसि । पारयामसीति पारयामसि ॥

यद्वासर्वस्य मन्त्रस्य

पदद्वयं

ओषंधयः सं । समोषंधयः । ओषंधयः सं ॥

पदत्रयं

सं वदन्ते सोमैन । सोमैन वदन्ते सं । सं वदन्ते ॥

पदचतुष्कं

वदन्ते सोमैन सुह राजां । राजां सुह सोमैन वदन्ते । वदन्ते सोमैन ॥

पदपञ्चकं

सोमैन सुह राजा यस्मै कृणोति । कृणोति यस्मै राजां सुह सोमैन । सोमैन सुह ॥

पदषट्कं

सुह राजां यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं । तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै राजां सह ।

पदसप्तकम्

राज्ञा यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि पारयामसि राजंस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै राजां । राज्ञा यस्मै ॥

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं । तं राजन् । राजन् पारयामसि । पारयामसिति पारयामसि ॥

43. ध्वज लक्षणम्

ब्रूयादादेः क्रमं सम्यगन्तादुत्तारयेद्यदि । वर्गे च ऋचि वा यत्र पठनं स ध्वजः स्मृतः ॥

जटादेः क्रमरूपं तु ह्यन्तादुत्तारयदिव । अर्धर्चा वा ऋचा वापि पठनं च ध्वजः स्मृतः ॥

क्रमांक	आदे क्रमः	क्रमः	अन्तादुत्तारणं
१	ओषंधयः सं	२	पारयामसीति पारयामसि ।
३	सं वदन्ते	४	राजन्पारयामसि
५	वदन्ते सोमैन	६	तं राजन्

७	सोमैन सह	८	ब्राह्मणस्तं
९	सह राज्ञां	१०	कृणोति ब्राह्मणः
११	राजेति राज्ञां	१२	यस्मै कृणोति
१३	यस्मै कृणोति	१४	राजेति राज्ञां
१५	कृणोति ब्राह्मणः	१६	सह राज्ञां
१७	ब्राह्मणस्तं	१८	सोमैन सह
१९	तं राजन्	२०	वदन्ते सोमैन
२१	राजन्पारयामसि	२२	सं वदन्ते
२३	पारयामसीति पारयामसि ।	२४	ओषधयः सं

अत्र विशेषः ।

१. अत्र ध्वजस्य पठनक्रमोऽङ्कैः प्रदर्शितः ।
२. यथा मन्त्रस्यैकस्यैवं ध्वजो भवति, तथैव पञ्च षट् सप्त मन्त्र संख्याकस्य वर्गस्याप्येवमेव ध्वजो भवति ।
तत्र वर्गादिस्थितस्य पदद्वयस्य वर्गान्तस्थेन पदेन द्विरुक्तेनेतिकारसहितेन च सम्बद्धो ज्ञातव्यः ।
यथा "अग्निमीळे...आ ममदिति आ गमत्" इति प्रथमस्य वर्गस्य ऋग्वेदस्य ध्वजो बोद्धव्यः ।
वर्गे वा ऋषि वा यः स्यात्पठितः स ध्वजः स्मृतः । इति वा पाठः ।

44. दण्डपाठः

दण्ड लक्षणम्

क्रममुक्त्वा विपर्यस्य पुनश्च क्रममुत्तरम् । अर्धचदिवमुक्तोऽयं क्रमदण्डोऽभिधीयते । चत्वारिंशद्भेदा भवन्ति दण्डस्य ॥

पूर्वार्धस्य

ओ३म् ओषधयः सं ॥ समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते ॥ वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमैन ॥ सोमैन वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमैन । सोमैन सह ॥ सह सोमैन वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमैन । सोमैन सह ॥ सह राज्ञां ॥ राज्ञां सह सोमैन वदन्ते समोषधयः । ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमैन । सोमैन सह ॥ सह राज्ञां ॥
राजेति राज्ञां ।

उत्तरार्धस्य

यस्मै कृणोति ॥ कृणोति यस्मै ।

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः ॥ ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं ॥ तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं । तं राजन् ॥ राजन्स्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं । तं राजन् । राजन् पारयामसि ॥ पारयामसि राजन्स्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै । यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं । तं राजन् । राजन् पारयामसि ॥ पारयामसिति पारयामसि ॥

45. रथः

रथः लक्षणम्

अनुलोमं जटान्तं तु विलोमे तु पृथक् पृथक् । रथाख्यां विकृतिं ब्रूयाद्रथभेदः प्रकथ्यते ॥ अनुलोमं जटान्तं तु प्रपठेद्वै पृथक् पृथक् । जटाख्यां विकृतिं धीमान् विलोमे तु पृथक् पृथक् ॥ अथैकादशभेदा भवति । विलोमेनैकादशभेदा ॥

पादशोऽर्धचर्चशो वापि सहोक्त्या दण्डवद्रथः ।

रथस्त्रिविधः । द्विचक्रस्त्रिचक्रश्चतुश्चक्रश्चेति । तत्र द्विचक्रो रथोऽर्धचर्चशो भवति । त्रिचक्रस्तु रथः प्रतिपादे समानपद संख्यायुतस्य गायत्री छन्दः कस्यैव मन्त्रस्य भवति । चतुश्चक्रो रथस्तु रथस्तु पादश एक भवति ।

द्वि चक्री रथः (अर्धचर्चशः)

द्वि चक्री रथः (अर्धचर्चशः)

क्रम सख्या		पूर्वार्ध	उत्तरार्ध	पद क्रम
१	१	ओषधयः सं ।	यस्मै कृणोति ।	प्रथम एक पात्क्रमः
		समोषधयः ।	कृणोति यस्मै ।	व्युत्क्रमः
२	१	ओषधयः सं ।	यस्मै कृणोति ।	द्वितीयो द्विपात्क्रमः
	२	सं वदन्ते ।	कृणोति ब्राह्मणः ।	द्वितीयो द्विपात्क्रमः
		वदन्ते समोषधयः ।	ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।	व्युत्क्रमः
३	१	ओषधयः सं ।	यस्मै कृणोति ।	तृतीयस्त्रिपात्क्रमः
	२	सं वदन्ते ।	कृणोति ब्राह्मणः ।	तृतीयस्त्रिपात्क्रमः
	३	वदन्ते सोमैः ।	ब्राह्मणस्तं ।	तृतीयस्त्रिपात्क्रमः
		सोमैः वदन्ते समोषधयः ।	तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।	व्युत्क्रमः
४	१	ओषधयः सं ।	यस्मै कृणोति ।	चतुर्थश्चतुष्पात्क्रमः
	२	सं वदन्ते ।	कृणोति ब्राह्मणः ।	चतुर्थश्चतुष्पात्क्रमः
	३	वदन्ते सोमैः ।	ब्राह्मणस्तं ।	चतुर्थश्चतुष्पात्क्रमः
	४	सोमैः सह ।	तं राजन् ।	चतुर्थश्चतुष्पात्क्रमः
		सह सोमैः वदन्ते समोषधयः ।	राजन्स्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।	व्युत्क्रमः
५	१	ओषधयः सं ।	यस्मै कृणोति ।	पञ्चमः पञ्चपात्क्रमः
	२	सं वदन्ते ।	कृणोति ब्राह्मणः ।	पञ्चमः पञ्चपात्क्रमः
	३	वदन्ते सोमैः ।	ब्राह्मणस्तं ।	पञ्चमः पञ्चपात्क्रमः
	४	सोमैः सह ।	तं राजन् ।	पञ्चमः पञ्चपात्क्रमः
	५	सह राज्ञां ।	राजन् पारयामसि ।	पञ्चमः पञ्चपात्क्रमः
		राज्ञेति राज्ञां ।	पारयामसीति पारयामसि ।	समाप्तिः

46. द्वि चक्री रथः

द्वि चक्री रथः पाठ विभिन्न दो मन्त्रों को लिया गया है क्योंकि इनमें सम पद प्राप्त होते हैं ।

छन्दः गायत्री, स्वर षड्भुजः, देवता अग्नि, संहिता पाठ

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋग्वेद १ । १ । १

छन्द गायत्री, स्वर षड्भुजः, देवता अग्नि, संहिता पाठ

ओ३म् अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः ॥ ऋग्वेद १ । २० । १

अनयोर्द्वयोर्मन्त्रयोः साकल्येनापि द्विचक्रो रथो भवति । तत्र प्रथमः प्रकारो यथा...

द्वि चक्री रथः प्रथमः प्रकारो

ओ३म् अग्निमीळे । अयं देवाय ॥ ईळेऽग्निं । देवायायं ॥

अग्निमीळे । ईळे पुरोहितं । अयं देवाय ॥ देवाय जन्मने ॥ पुरोहितमीळेऽग्निं । जन्मने देवायायं ॥

अग्निमीळे । ईळे पुरोहितं । पुरोहितं यज्ञस्य ॥ अयं देवाय । देवाय जन्मने । जन्मने स्तोमः ॥ यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निं । स्तोमो जन्मने देवायायं ॥

अग्निमीळे । ईळे पुरोहितं । पुरोहितमिति यज्ञस्य । पुरोहितमिति पुरःहितं । यज्ञस्य देवं । अयं देवाय । देवाय जन्मने । जन्मने स्तोमः । स्तोमो विप्रेभिः । देवं यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निम् ॥ विप्रेभिः स्तोमो जन्मने देवायायं ॥

अग्रिमींळे । ईळे पुरोहितम् । पुरोहितं यज्ञस्यं । पुरोहितमिति पुरःऽहितं । यज्ञस्यं देवं । देवमृत्विजं ॥ अयम् देवायं । देवाय जन्मने । जन्मने स्तोमः । स्तोमो विप्रेभिः । विप्रेभिरासया ॥ ऋत्विजं देवम् यज्ञस्यं पुरोहितमीळेऽग्रिम् । आसया विप्रेभिः स्तोमो जन्मने देवायायं ॥
अग्रिमींळे । ईळे पुरोहितम् । पुरोहितम् यज्ञस्यं । पुरोहितमिति पुरःऽहितं । यज्ञस्यं देवं । देवमृत्विजं ॥ अयन् देवायं । देवाय जन्मने । जन्मने स्तोमः । स्तोमो विप्रेभिः । विप्रेभिरासया ॥ ऋत्विजमित्युत्विजं ॥ आसयेयांसया ॥
होतारं रत्नधातमं । अकारि रत्नधातमः ॥ रत्न धातमं होतांरं । रत्न धातमोऽकारि ॥ होतांरं रत्नधातमं । अकारि रत्नऽधातमः ॥ रत्नऽधातममिति रत्नऽधातमं ॥ रत्नऽधातममिति रत्नऽधातमः ॥

47. द्विचक्री रथः द्वितीयः प्रकारो

पूर्वोक्तयोर्द्वयोर्मन्त्रयोः साकल्येन द्विचक्री रथो भवति । तस्य द्वितीयः प्रकारो यथा
अग्रिमींळे । अयं देवायं ॥ ईळेऽग्रिं । देवायायं ॥
अग्रिमींळे । अयं देवायं ॥ ईळे पुरोहितं । देवाय जन्मने ॥ पुरोहितमीळेऽग्रिं । जन्मने देवायायं ॥
अग्रिमींळे । अयं देवायं ॥ ईळे पुरोहितं । देवाय जन्मने ॥ पुरोहितं यज्ञस्यं । जन्मने स्तोमः । यज्ञस्यं पुरोहितमीळेऽग्रिं ॥ स्तोमो जन्मने देवायायं ॥
अग्रिमींळे । अयं देवायं ॥ ईळे पुरोहितं । देवाय जन्मने ॥ पुरोहितं यज्ञस्यं । जन्मने स्तोमः । यज्ञस्यं पुरोहितमीळेऽग्रिं ॥ स्तोमो जन्मने देवायायं ॥
अग्रिमींळे । अयं देवायं ॥ ईळे पुरोहितं । देवाय जन्मने ॥ पुरोहितं यज्ञस्यं । जन्मने स्तोमः । पुरोहितमिति पुरःऽहितं । यज्ञस्यं देवं । स्तोमो विप्रेभिः ॥ देवं यज्ञस्यं पुरोहितमीळेऽग्रिं ॥ विप्रेभिः स्तोमो जन्मने देवायायं ॥
अग्रिमींळे । अयं देवायं ॥ ईळे पुरोहितं । देवाय जन्मने ॥ पुरोहितं यज्ञस्यं । जन्मने स्तोमः ॥ पुरोहितमिति पुरःऽहितं । यज्ञस्यं देवं । स्तोमो विप्रेभिः ॥ देवमृत्विजं विप्रेभिरासया ॥ ऋत्विजं देवं यज्ञस्यं पुरोहितमीळेऽग्रिं । आसया विप्रेभिः स्तोमो जन्मने देवायायं ॥
अग्रिमींळे । अयं देवायं ॥ ईळे पुरोहितं । देवाय जन्मने ॥ पुरोहितं यज्ञस्यं । जन्मने स्तोमः ॥ पुरोहितमिति पुरःऽहितं । यज्ञस्यं देवं । स्तोमो विप्रेभिः ॥ देवमृत्विजं विप्रेभिरासया ॥ ऋत्विजमित्युत्विजं । आसयेत्यांसया ॥
होतारं रत्नधातमं । अकारि रत्नधातमः ॥ रत्नधातमं होतांरं । रत्नधातमोऽकारि ॥ होतांरं रत्नधातमं । अकारि रत्नधातमः ॥ रत्नधातममिति रत्नऽधातमं । रत्नधातम इति रत्नऽधातमः ॥

48. त्रिचक्री रथः

ओ३म् विष्णोः कर्माणि पश्यतु यतो ब्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ऋग्वेद १.२२.१९
इत्यस्य त्रिपदागायत्रीछन्दस्कस्य मन्त्रस्य प्रतिपादं समानपदसंख्यात्वात्त्रिचक्री रथो भवति, यथा

त्रि चक्री रथः					
क्रम संख्या		प्रथमः पादः	द्वितीयः पादः	तृतीयः पादः	क्रमः
१	१	विष्णोः कर्माणि ।	यतो ब्रतानि ।	इन्द्रस्य युज्यः ।	प्रथमः क्रमः
		कर्माणि विष्णोः ।	ब्रतानि यतः ।	युज्य इन्द्रस्य ।	व्युत्क्रमः
२	१	विष्णोः कर्माणि ।	यतो ब्रतानि ।	इन्द्रस्य युज्यः ।	द्वितीयः क्रमः
	२	कर्माणि पश्यत ।	ब्रतानि पस्पशे ।	युज्य सखा ।	द्वितीयः क्रमः
		पश्यतु कर्माणि विष्णोः ।	पस्पशे ब्रतानि यतः ।	सखा युज्य इन्द्रस्य ।	व्युत्क्रमः
प्रथमः पादः		विष्णोः कर्माणि ।	कर्माणि पश्यत ।	पश्येति पश्यत ।	समाप्तिः
द्वितीय पादः		यतो ब्रतानि ।	ब्रतानि पस्पशे ।	पस्पश इति पस्पशे ।	समाप्तिः
तृतीय पादः		इन्द्रस्य युज्यः ।	युज्य सखा ।	सखेति सखा ।	समाप्तिः

49. चतुश्चक्री रथः

चतुश्चक्री रथः						
क्रम संख्या		प्रथमः पादः	द्वितीयः पादः	तृतीयः पादः	चतुर्थः पादः	क्रमः
१	१	ओषधयः सं ।	सोमेन सह ।	यस्मै कृणोति ।	तं राजन् ।	प्रथमः क्रमः
		समोषधयः ।	सह सोमेन ।	कृणोति यस्मै ।	राजंस्तं ।	व्युत्क्रमः
२	१	ओषधयः सं ।	सोमेन सह ।	यस्मै कृणोति ।	तं राजन् ।	द्वितीयः क्रमः

	२	सं वदन्ते ।	सुह राज्ञां ।	कृणोति ब्राह्मणः ।	राजन्पारयामसि ।	द्वितीयः क्रमः
		वदन्ते समोषधयः ।	राज्ञां सुह सोमैन ।	ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।	पारयामसि राजंस्तं ।	व्युत्क्रमः
प्रथमः पादः		ओषधयः सं ।	सं वदन्ते ।	वदन्त इति वदन्ते ।	समाप्तिः	
द्वितीय पादः		सोमैन सुह ।	सुह राज्ञां ।	राज्ञेति राज्ञां ।	समाप्तिः	
तृतीय पादः		यस्मै कृणोति ।	कृणोति ब्राह्मणः ।	ब्राह्मण इति ब्राह्मणः ।	समाप्तिः	
चतुर्थ पादः		तं राजन् ।	राजन्पारयामसि ।	पारयामसीति पारयामसि ।	समाप्तिः	

50. घनः

घनश्चतुर्विधः । घनो घनवल्लभश्च । तौ च प्रत्येकं द्विधा भवतः ।

प्रथमं घन लक्षणम्

अन्तात्क्रमं पठेत्पूर्वमादिपर्यन्तमानयेत् । आदिक्रमं नयेदन्तं घनमाहुर्मनीषिणः ।

पूर्वार्धस्य (अन्तादापर्यन्तम्)

राज्ञेति राज्ञां । सुह राज्ञां । सोमैन सुह । वदन्ते सोमैन । सं वदन्ते । ओषधयः सं ...

पूर्वार्धस्य (आदितोऽन्तपर्यन्तम्)

सं वदन्ते । वदन्ते सोमैन सोमैन सुह । सुह राज्ञां । राज्ञेति राज्ञां ।

उत्तरार्धस्य (अन्तादापर्यन्तम्)

पारयामसीति पारयामसि । राजन् पारयामसि । तं राजन् । ब्राह्मणस्तं । कृणोति ब्राह्मणः । यस्मै कृणोति ...

उत्तरार्धस्य (आदितोऽन्तपर्यन्तम्)

कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं । तं राजन् । राजन् पारयामसि । पारयामसीति पारयामसि ।

द्वितीयं घन लक्षणम्

शिखामुक्त्वा विपर्यस्य तत्पदानि पुनः पठेत् । अयं घन इति प्रोक्त इत्यष्टौ विकृतीः पठेत् ॥

शिखाः पाठः तस्य विपर्यासः तत्पदानां पुनः पाठः

ओषधयः सं समोषधय ओषधयः सं वदन्ते वदन्ते समोषधय ओषधयः सं वदन्ते ॥

सं वदन्ते वदन्ते सं सं वदन्ते सोमैन सोमैन वदन्ते सं सं वदन्ते सोमैन ॥

वदन्ते सोमैन सोमैन वदन्ते वदन्ते सोमैन सह सह सोमैन वदन्ते वदन्ते सोमैन सुह ॥

सोमैन सुह सुह सोमैन सोमैन सुह राज्ञा राज्ञां सुह सोमैन सोमैन सुह राज्ञां ॥

सुह राज्ञा राज्ञां सुह सुह राज्ञां ॥ राज्ञेति राज्ञां ॥

यस्मै कृणोति कृणोति यस्मै यस्मै कृणोति ब्राह्मणो ब्राह्मणः कृणोति यस्मै यस्मै कृणोति ब्राह्मणः ॥

कृणोति ब्राह्मणो ब्राह्मणः कृणोति कृणोति ब्राह्मणस्तं तं ब्राह्मणः कृणोति कृणोति ब्राह्मणस्तं ॥

ब्राह्मणस्तं तं ब्राह्मणो ब्राह्मणस्तं राजन् राजन्स्तं ब्राह्मणो ब्राह्मणस्तं राजन् ॥

तं राजन् राजन्स्तं तं राजन् पारयामसि पारयामसि राजन्स्तं तं राजन् पारयामसि ॥

राजन् पारयामसि पारयामसि राजन् । राजन् पारयामसि ॥ पारयामसीति पारयामसि ॥

51. घनः पाठ

ओ३म् गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतु उद्वंशमिव येमिरे ॥ ऋग्वेद १.१०.१

प्रथमोऽर्धः

गायन्ति त्वा, त्वा गायन्ति, गायन्ति त्वा, गायत्रिणो, गायत्रिणस्त्वा गायन्ति, गायन्ति त्वा गायत्रिणः ॥

त्वा गायत्रिणो, गायत्रिणस्त्वा, त्वा गायत्रिणो, ऽर्चन्त्य, ऽर्चन्ति गायत्रिणस्त्वा, त्वा गायत्रिणोऽर्चति ॥

गायत्रिणोऽर्चन्त्य, ऽर्चन्ति गायत्रिणो, गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कम् ऽर्कमर्चन्ति गायत्रिणो गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कम् ॥

अर्चन्त्यर्कम् ऽर्कमर्चन्त्य ऽर्चन्त्यर्कम् ऽर्कमणो ऽर्किणोऽर्कमर्चन्त्य ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ॥

द्वितीयोऽर्धः

ब्रह्माणस्त्वा, त्वा ब्रह्माणो, ब्रह्माणस्त्वा, शतक्रतो शतक्रतो त्वा ब्रह्माणो, ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतो ॥

त्वा शतक्रतो, शतक्रतो त्वा, त्वा शतक्रतु, उदुच्छंतक्रतो त्वा, त्वा शतक्रतु उत् ॥

शतक्रतु उदुच्छंतक्रतो, शतक्रतु उद्वंशमिवः वंशमिवोच्छतक्रतो, शतक्रतु उद्वंशमिव ॥ शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥

उदृशमिव, वंशमिवोदुदृशमिव येमिरे, येमिरे वंशमिवोदुदृशमिव येमिरे ॥ वंशमिवेति वंशम्ऽइव । येमिरे इति येमिरे ॥

वंशमिव येमिरे, येमिरे वंशमिव, वंशमिव येमिरे ॥ वंशमिवेति वंशम्ऽइव । येमिरे इति येमिरे ॥

52. पञ्चसन्धियुक्तो घनपाठः

घनवल्लभः

पदद्वयस्य क्रमोत्क्रमव्युत्क्रामाभिक्रमसंक्रमैः पञ्चसन्धिपाठो भवति । अनुलोमविलोमानुलोमैर्जटापाठो जायते । जटया सहोत्तरपदपाठेन शिखापाठो भवति । क्रमुत्त्वा, विपर्यस्य, पुनश्च क्रमपाठे कृते ध्वजो भवति । जटादण्डाभ्यः घनपाठः सिद्ध्यति । सर्वमेवैतत्पञ्चसन्धियुते घनपाठे घनवल्लभे समुच्चयेन संगच्छते ।

ओ३म् परां मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुचक्षंसम् ॥ ऋग्वेद १.२५.१६

परां मे । मे मे । मे परां । परा परां । परां मे ॥ परां मे, मे परा, परां मे, यन्ति; यन्ति मे परा परा, मे यन्ति ॥

मे यन्ति । यन्ति यन्ति । यन्ति मे । मे मे । मे यन्ति ॥ मे यन्ति, यन्ति मे, मे यन्ति, धीतयों; धीतयों यन्ति मे, मे यन्ति धीतयः ॥

यन्ति धीतयः । धीतयों धीतयः । धीतयों यन्ति । यन्ति यन्ति । यन्ति धीतयः ॥ यन्ति धीतयों, धीतयों यन्ति, यन्ति धीतयो, गावो गावों, धीतयों यन्ति, यन्ति धीतयो गावः ॥

धीतयो गावः । गावो गावः । गावों धीतयः । धीतयों धीतयः । धीतयों गावः । धीतयो गावो, गावों धीतयों, धीतयो गावो; न; न गावों धीतयों धीतयो गावो न ॥

गावो न । न न । न गावः । गावो गावः । गावो न ॥ गावो न, न गावो, गावो न, गव्यूती; गव्यूतीर्न गावो, गावो न गव्यूतीः ॥

न गव्यूतीः । गव्यूतीर्गव्यूतीः । गव्यूतीर्न । न न । न गव्यूतीः । न गव्यूती, गव्यूतीर्न, न गव्यूतीरऽन्व, ऽनु गव्यूतीर्न, न गव्यूतीरनु ॥

गव्यूतीरनु । अन्वनु । अनु गव्यूतीः । गव्यूतीर्गव्यूतीः । गव्यूतीरनु ॥ गव्यूतीरन्वऽनुगव्यूतीर्गव्यूतीरनु ॥ अन्वित्यनु ॥

इच्छन्तीरुचक्षंसं । उरुचक्षंसमुरुचक्षंसं । उरुचक्षंसमिच्छन्तीः । इच्छन्तीरिच्छन्तीः । इच्छन्तीरुचक्षंसं । ईच्छन्तीरुरुचक्षंसं ॥ उरुचक्षंसमित्युरुचक्षंसं ॥

53. पञ्च सन्धियुक्तो जटा पाठः

ओ३म् परां मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुचक्षंसम् ॥ ऋग्वेद १.२५.१६

परां मे । मे मे । मे परां । परा परां । परां मे ॥ परां मे, मे परा, परां मे ॥

मे यन्ति । यन्ति यन्ति । यन्ति मे । मे मे । मे यन्ति ॥ मे यन्ति, यन्ति मे, मे यन्ति ॥

यन्ति धीतयः । धीतयों धीतयः । धीतयों यन्ति । यन्ति यन्ति । यन्ति धीतयः ॥ यन्ति धीतयों, धीतयों यन्ति, यन्ति धीतयोः ॥

धीतयो गावः । गावो गावः । गावों धीतयः । धीतयों धीतयः । धीतयों गावः ॥ धीतयो गावो, गावो धीतयो, धीतयो गावोः ॥

गावो न । न न । न गावः । गावो गावः । गावो न ॥ गावो न, न गावो, गावो न ॥

न गव्यूतीः । गव्यूतीर्गव्यूतीः । गव्यूतीर्न । न न । न गव्यूतीः ॥ न गव्यूतीर्गव्यूतीर्न, न गव्यूतीः ॥

गव्यूतीरनु । अन्वनु । अनु गव्यूतीः । गव्यूतीर्गव्यूतीः । गव्यूतीरनु ॥ गव्यूतीरन्वनु गव्यूतीर्गव्यूतीरनु ॥ अन्वित्यनु अन्वित्यनु ॥

इच्छन्तीरुचक्षंसं । उरुचक्षंसमुरुचक्षंसं । उरुचक्षंसमिच्छन्तीः । इच्छन्तीरिच्छन्तीः । इच्छन्तीरुचक्षंसं ॥ ईच्छन्तीरुरुचक्षंसमुरुचक्षंसमिच्छन्तीरिच्छन्तीरुचक्षंसं ।

[एवमेव पञ्चसन्धियुक्ताः सर्वा अपि विकृतयः पठ्यन्ते वेदविद्विः । पदक्रम विशेषज्ञो वर्णक्रमविचक्षणः । स्वरमात्राविशेषज्ञो गच्छेदाचार्यसंपदम् ॥ संहितापाठतः पुण्यं द्विगुणं पदपाठतः । त्रिगुणं क्रमपाठेन जटापाठेन षड्गुणम् ॥ (वराहपुराणे)

54. अंकीय क्रम के आधार पर विकृति पाठों में पद का स्थान

अङ्क के आधार के अनुसार पदों का स्थान वेदमन्त्र का मूल स्वरूप (विकृति पाठों के लिए पूर्वाधस्य व उत्तरार्धस्य के अन्त में इतिकरण किया जाता है ।)

संहिता पाठ

वेदमन्त्र का मूल स्वरूप

सक्रम पद पाठ

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ ।

व्युत्क्रम पद पाठ

१२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ ।

सक्रम क्रम पाठ

१ २ । २ ३ । ३ ४ । ४ ५ । ५ ६ ।...

व्युत्क्रम क्रम पाठ

६ ५ । ५ ४ । ४ ३ । ३ २ । २ १ ।...

जटा पाठ (पद क्रम)

१ २ २ १ १ २ । २ ३ ३ २ २ ३ । ३४४३३४ । ४५५४४५ ॥...

घन पाठ पद क्रम

१२ २१ १२ ३ ३ २११२३ । २ ३३२ २ ३ ४४३ २ २ ३४ । ३ ३४५५४३३४५ २३ ५ ॥...

पुष्प माला पाठ (पद क्रम)

क्रम माला पाठ (पद क्रम)

शिखा पाठ (पद क्रम)

रेखा पाठ (पद क्रम)

ध्वज पाठ (पद क्रम)

दण्ड पाठ (पद क्रम)

रथ पाठ (पद क्रम)

55. ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । ऋग्वेद १.१.१

56. ओ३म् अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रैभिरासुया । ऋग्वेद १.२०.१

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋग्वेद १.१.१

ओ३म् अ॒यं दे॒वाय॑ जन्म॒ने स्तोमो॑ वि॒प्रेभि॑रास॒या । अ॒कारि॑ रत्न॒धात॑मः ॥ ऋग्वेद १.२०.१

द्वि चक्री रथः प्रथमः प्रकारो

ओ३म्अग्निमीळे । अ॒यं दे॒वाय॑ ॥ ई॒ळेऽग्निं । दे॒वाया॒यं ॥

अग्निमीळे । ईळे पुरोहित । अयं देवाय ॥ देवाय जन्मने ॥ पुरोहितमीळेऽग्नि । जन्मने देवाय॥

अग्निमीळे । ईळे पुरोहितं । पुरोहितं यज्ञस्य ॥ अयं देवाय । देवाय जन्मने । जन्मने स्तोमः ॥ यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निं । स्तोमो जन्मने देवायाय ॥

अग्निमीळे । ईळे पुरोहितं । पुरोहितमिति यज्ञस्य । पुरोहितमिति पुरःहितं । यज्ञस्य देवं । अयं देवाय । देवाय जन्मने । जन्मनेस्तोमः । स्तोमोविप्रैभिः । देवं यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निम् ॥ विप्रैभिःस्तोमोजन्मने देवायायं ॥

अग्निमीळे । ईळे पुरोहितम् । पुरोहितं यज्ञस्य । पुरोहितमिति पुरःहितं । यज्ञस्य देवं । देवमत्विजं ॥ अयम् देवाय । देवाय जन्मने । जन्मनेस्तोमः । स्तोमोविप्रेभिः ।

विप्रैर्भिरासया ॥ ऋत्विजं देवम् यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निम् । आसया विप्रैर्भिःस्तोमोजन्मने देवायायं ॥

अग्निमीळे । ईळे पुरोहितम् । पुरोहितम् यज्ञस्य । पुरोहितमिति पुरःऽहितं । यज्ञस्य देवं । देवमृत्विजं ॥ अयन् देवाय । देवाय जन्मने । जन्मनेस्तोमः । स्तोमोविप्रेभिः ।

विप्रै॑भिरा॒सया ॥ ऋ॒त्विज॑मि॒त्य॒त्विजं॑ ॥ आ॒सये॑या॒सया ॥

होतां रत्नधातं । अकारि रत्नधातं ॥ रत्न धातुं होतां । रत्न धातुमोऽकारि ॥ होतां रत्नधातं । अकारि रत्नधातं ॥ रत्नधातुमिति रत्नधातं ॥ रत्नधातमिति रत्नधातं ॥

द्विचक्री रथःद्वितीयः प्रकारो

अ॒ग्निमी॑ळे । अ॒यं दे॒वाय॑ ॥ ई॒ळेऽग्निं॑ । दे॒वाया॑यं ॥

अग्निमीळे । अयं देवाय ॥ ईळे पुरोहितं । देवाय जन्मने ॥ पुरोहितमीळेऽग्निं । जन्मने देवायाय ॥

अ॒ग्नि॒मी॒ळे । अ॒यं दे॒वाय॑ ॥ ई॒ळे पु॒रोहि॑तं । दे॒वाय॑ जन्म॑ने ॥ पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ । जन्म॑ने स्तोमः॑ । य॒ज्ञस्य॑ पु॒रोहि॑तमी॒ळेऽग्नि॑ ॥ स्तोमो॑ जन्म॑ने दे॒वाया॑यं ॥

अग्निमीळे । अयं देवाय ॥ ईळे पुरोहितं । देवाय जन्मने ॥ पुरोहितं यज्ञस्य । जन्मने स्तोमः । यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निं ॥ स्तोमो जन्मने देवायाय ॥

अ॒ग्नि॒मी॒ळे । अ॒यं दे॒वाय॑ ॥ ई॒ळे पु॒रोहि॑तं । दे॒वाय॑ ज॒न्म॒ने ॥ पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ । ज॒न्म॒ने स्तोमः॑ । पु॒रोहि॑त॒मिति॑ पु॒रऽहि॑तं । य॒ज्ञस्य॑ दे॒वं । स्तोमो॑ वि॒प्रेभिः॑ ॥ दे॒वं य॒ज्ञस्य॑

पुरोहितमीळेऽग्निं ॥ विप्रैभिः स्तोमो जन्मने देवायायं ॥

अ॒ग्नि॒मी॒ळे । अ॒यं दे॒वाय॑ ॥ ई॒ळे पु॒रोहि॑तं । दे॒वाय॑ जन्म॑ने ॥ पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ । जन्म॑ने स्तोमः॑ ॥ पु॒रोहि॑त॒मिति॑ पु॒रऽहि॑तं । य॒ज्ञस्य॑ दे॒वं । स्तोमो॑ वि॒प्रैभिः॑

॥देवमृत्विजंविप्रैर्भिरासृया ॥ ऋत्विजं देवं यज्ञस्य पुरोहितमीळेऽग्निं । आसृया विप्रैर्भिः स्तोमो जन्मने देवायायं ॥

अग्निमीळे । अयं देवाय ॥ ईळे पुरोहितं । देवाय जन्मने ॥ पुरोहितं यज्ञस्य । जन्मने स्तोमः ॥ पुरोहितमिति पुरःहितं । यज्ञस्य देवं । स्तोमो विप्रैभिः ।

॥ देवमृत्विजं विप्रैर्भिरासया ॥ ऋत्विजमित्यूत्विजं । आसयेत्यासया ॥

होतारं रत्नधातमं । अकारि रत्नधातमः ॥ रत्नधातमं होतारं । रत्नधातमोऽकारि ॥ होतारं रत्नधातमं । अकारि रत्नधातमः ॥ रत्नधातममिति रत्नधातमं । रत्नधातमं इति

57. ओ३म् ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राजा । ऋग्वेद १०.९७.२२

संहिता पाठ, उदात्त अनुदात्त पाठ

औषधीस्तुतिः, निचृदनुष्टुप्, गान्धारः, भिषगाथर्वणः ।

ओ३म् ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राजा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्यारयामसि ॥ ऋग्वेद १०.९७.२२

पदार्थः (ओषधयः) ओषधियाँ (सोमेन) सोमनामक ओषधिविशेष (राजा सह) नीरोगकरण गुणों से राजमान के साथ (सं वदन्ते) संवाद करती हुई सी-एकाङ्ग होती हुई सी माओं कहती हैं (राजन्) हे नीरोगकरण गुणों से राजमान ! (ब्राह्मणः) विद्वान् वैद्य (यस्मै) जिस रोग के लिए (कृणोति) हमारा प्रयोग करता है, (तम्) उसे (पारयामसि) रोगसमुद्र से पार करती हैं ॥

पद पाठ

ओ३म् ओषधयः । सम् । वदन्ते । सोमेन । सह । राजा । यस्मै । कृणोति । ब्राह्मणः । तम् । राजन् । पारयामसि ॥

क्रम पाठ

ओ३म् ओषधयस्सं । संवदन्ते । वदन्तेसोमेन । सोमेनसह । सहराजा । राज्ञेतिराजा ॥

यस्मैकृणोति । कृणोतिब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं । तंराजन् । राजन्यारयामसि । पारमसीतिपारयामसि ॥

जटा पाठ

ओ३म् ओषधयस् सं, समोषधय, ओषधयस् सम् । सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन । सोमेन सह, सह सोमेन, सोमेन सह । सह राजा, राजा सह, सह राजा । राज्ञेति राजा ॥

यस्मै कृणोति, कृणोति यस्मै, यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणो, ब्राह्मणः कृणोति, कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं, तं ब्राह्मणो, ब्राह्मणस्तं । तं राजन्, राजस्तं, तं राजन् । राजन्यारयामसि, पारयामसि राजन्, राजन् पारयामसि । पारयामसीति । पारयामसि ॥

शिखा पाठ

ओ३म् ओषधयस् सं, समोषधय, ओषधयस् सम्, वदन्ते । सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते, सोमेन । वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन, सह । सोमेन सह, सह सोमेन, सोमेन सह, राजा । सह राजा, राजा सह, सह राजा । राज्ञेति राजा ॥

यस्मै कृणोति, कृणोति यस्मै, यस्मै कृणोति, ब्राह्मणः । कृणोति ब्राह्मणो, ब्राह्मणः कृणोति, कृणोति ब्राह्मणस, तम् । ब्राह्मणस्तं, तं ब्राह्मणो, ब्राह्मणस्तं, राजन् । तं राजन्, राजस्तं, तं राजन्, पारयामसि । राजन्यारयामसि, पारयामसि राजन्, राजन् पारयामसि । पारयामसीति । पारयामसि ॥

घनः

ओषधयः सं समोषधय ओषधयः सं वदन्ते वदन्ते समोषधय ओषधयः सं वदन्ते । सं वदन्ते वदन्ते सं सं वदन्ते सोमेन सोमेन वदन्ते सं सं वदन्ते सोमेन । वदन्ते सोमेन सोमेन वदन्ते वदन्ते सोमेन सह सह सोमेन वदन्ते वदन्ते सोमेन सह । सोमेन सह सह सोमेन सोमेन सह राजा राजा सह सोमेन सोमेन सह राजा । सह राजा राजा सह सह राजा ॥ राज्ञेति राजा ॥

यस्मै कृणोति कृणोति यस्मै यस्मै कृणोति ब्राह्मणो ब्राह्मणः कृणोति यस्मै यस्मै कृणोति ब्राह्मणः । कृणोति ब्राह्मणो ब्राह्मणः कृणोति कृणोति ब्राह्मणस्तं तं ब्राह्मणः कृणोति कृणोति ब्राह्मणस्तं । ब्राह्मणस्तं तं ब्राह्मणो ब्राह्मणस्तं राजन् राजन्स्तं ब्राह्मणो ब्राह्मणस्तं राजन् । तं राजन् राजन्स्तं तं राजन् पारयामसि पारयामसिराजन्स्तं तं राजन् पारयामसि । राजन् पारयामसि पारयामसि राजन् । राजन् पारयामसि । पारयामसीति पारयामसि ॥

रेखा पाठ

ओ३म् ओषधयः सं । समोषधयः । ओषधयः सं ॥

सं वदन्ते सोमेन । सोमेन वदन्ते सं । सं वदन्ते ॥

वदन्ते सोमेन सह राजा । राजा सह सोमेन वदन्ते । वदन्ते सोमेन ॥

सोमेन सह । सह राजा । राज्ञेति राजा ॥

यस्मै कृणोति । कृणोति यस्मै । यस्मै कृणोति ॥

कृणोति ब्राह्मणस्तं । तं ब्राह्मणः कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः ।

ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि । पारयामसि राजन्स्तं ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं ।

तं राजन् । राजन् पारयामसि । पारयामसीतिपा । रयामसि ॥

रेखा पाठ सर्वस्य मन्त्रस्य

ओषधयः सं । समोषधयः । ओषधयः सं ॥

सं वदन्ते सोमेन । सोमेन वदन्ते सं । सं वदन्ते ॥

वदन्ते सोमेन सह राजा । राजा सह सोमेन वदन्ते । वदन्ते सोमेन ॥

सोमेन सह राजा यस्मै कृणोति । कृणोति यस्मै राजा सह सोमेन । सोमेन सह ॥

सुह राज्ञां यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं । तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै राज्ञां सह ।

राज्ञा यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि पारयामसि राज्ञस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै राज्ञां । राज्ञा यस्मै ॥

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं । तं राजन् । राजन् पारयामसि । पारयामसिति पारयामसि ॥

ध्वज पाठ

ओषधयः संपारयामसीति पारयामसि ।

सं वदन्ते राजन्पारयामसि ।

वदन्ते सोमैनं राजन् ।

सोमैनं सहब्राह्मणस्तं ।

सह राज्ञांकृणोति ब्राह्मणः ।

राज्ञेति राज्ञायस्मै कृणोति ।

यस्मै कृणोतिराज्ञेति राज्ञां ।

कृणोति ब्राह्मणःसह राज्ञां ।

ब्राह्मणस्तंसोमैनं सह ।

तं राजन्वदन्ते सोमैनं ।

राजन्पारयामसिसं वदन्ते ।

पारयामसीति पारयामसि । ओषधयः सं ।

दण्डपाठः

पूर्वार्धस्य

ओ३म् ओषधयः सं ॥ समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते ॥ वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमैनं ॥ सोमैनं वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमैनं । सोमैनं सह ॥ सह सोमैनं वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमैनं । सोमैनं सह ॥ सह राज्ञां ॥ राज्ञां सह सोमैनं वदन्ते समोषधयः । ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमैनं । सोमैनं सह ॥सह

राज्ञां ॥ राज्ञेति राज्ञां ।

उत्तरार्धस्य

यस्मै कृणोति ॥ कृणोति यस्मै ।

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः ॥ ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं ॥ तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं । तं राजन् ॥ राज्ञस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं । तं राजन् । राजन् पारयामसि ॥ पारयामसि राज्ञस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै । यस्मै कृणोति । कृणोति ब्राह्मणः । ब्राह्मणस्तं

। तं राजन् । राजन् पारयामसि ॥ पारयामसिति पारयामसि ॥

रथःद्विचक्री रथः (अर्धर्चशः)

ओषधयः सं । यस्मै कृणोति ।

समोषधयः । कृणोति यस्मै ।

ओषधयः सं । यस्मै कृणोति ।

सं वदन्ते । कृणोति ब्राह्मणः ।

वदन्ते समोषधयः । ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

ओषधयः सं । यस्मै कृणोति ।

सं वदन्ते । कृणोति ब्राह्मणः ।

वदन्ते सोमैनं । ब्राह्मणस्तं ।

सोमैनं वदन्ते समोषधयः । तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

ओषधयः सं । यस्मै कृणोति ।

सं वदन्ते । कृणोति ब्राह्मणः ।

वदन्ते सोमैनं । ब्राह्मणस्तं ।

सोमैन सह । तं राजन् ।

सह सोमैन वदन्ते समोषधयः । राजंस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

ओषधयः सं । यस्मै कृणोति ।

सं वदन्ते । कृणोति ब्राह्मणः ।

वदन्ते सोमैन । ब्राह्मणस्तं ।

सोमैन सह । तं राजन् ।

सह राजा । राजन् पारयामसि ।

राजेति राजा । पारयामसीति पारयामसि ।

58. ओ३म् तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि । यजुर्वेद ३.३५

देवता सविता, छन्द गायत्री (अतः इसे निचृद गायत्री कहते हैं ।), स्वर षड्,

यजुर्वेद संहिता ३६ । ३, सामवेद १४६२, ऋग्वेद, ३ । ६२ । १०, यजुर्वेद संहिता ३ । ३५, २२ । ९, ३० । २, काण्व यजुर्वेद संहिता ३ । ४३, २४ । १३, ३४ । २, ३६ । ३ तैत्तरीय संहिता १ । ५ । ६ । १२, ४ । १ । ११ । ७ मैत्रायणी संहिता ४ । १० । ७७ ॥

ब्राह्मण मन्त्रों में गायत्री मन्त्रों का उल्लेख अनेक स्थानों में है ।

ऐतरेय ब्राह्मण ४ । ३२ । २, ५ । ५ । ६, १३ । ८, १९ । ८, कौशीतकी ब्राह्मण २२ । ३, २६ । १०, गोपथ ब्राह्मण १ । १ । ३२, १ । १ । ३४, दैवत ब्राह्मण ३ । २५, शतपथ ब्राह्मण २ । ३ । ४ । ३९, २३ । ६ । २ । ९, १४ । ९ । ३ । ११, तैत्तरीय सं० १ । ५ । ६ । ४, ४ । १ । १, मैत्रायणी सं० ४ । १० । ३, १४९ । १४ ॥

आरण्यकों में गायत्री का उल्लेख इन स्थानों पर है । तैत्तरीय आरण्यक १ । १ । २१० । २७ । १, बृहदारण्यक ६ । ३ । ११ । ४ । ८ ॥

उपनिषदों में इस महामन्त्र की चर्चा निम्न प्रकरणों में है

नारायण उपनिषद् १५, २, मैत्रेय उपनिषद् ६ । ७ । ३४, जैमिनी उपनिषद् ४ । २८ । १, श्वेताश्वेतर उपनिषद् ४ । १८ ॥

सूत्र ग्रंथों में गायत्री का विवेचन निम्न प्रसंगों में आया है ।

आश्वालायन श्रौत सूत्र ७ । ६ । ६, ८ । १ । १८, शांखायन श्रौत सूत्र २ । १० । २, १२ । ७, ५ । ५ । २, १० । ६ । १०, ९ । १६, आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ६ । १८ । १, शांखायन गृह्य सूत्र २ । ५ । १२, ७ । १९, ६ । ४ । ८, कौशीतकी सूत्र ९१ । ६, खगटा गृह्य सूत्र २ । ४ । २१, आपस्तम्ब गृह्य सूत्र २ । ४ । २१, बोधायन ध० शा० २ । १० । १७ । १४, मान० ध० शा० २ । ७७, ऋग्विविधान १ । १२ । ५, मान० गृ० सू० १ । २ । ३, ४ । ४ । ८, ५ । २ ॥

भाष्य रामनाथ वेदालंकर सामवेद

ऋचा में तीन पाद है । प्रत्येक वेद से एक एक पाद दुहा गया है (मनु २ । ७७) मनु के इस वचन के आधार पर प्रत्येक पाद का पृथक् अर्थ देखते हैं । (सवितु) सकल जगत की उत्पत्ति करनेवाला, सब शुभ गुणों के प्रेरक परमात्मा का (तत्) वह प्रसिद्ध तेज (वरेण्यम्) है । २(देवस्य) दाता, प्रकाशमान और प्रकाशक उस परमात्मा के (भर्गः) तेज को, हम (धीमहि) धारण करें वा ध्यावें । ३ (यः) जो सविता प्रभु (नः) हमारे (धियः) प्रज्ञाओं और कर्मों को (प्रचोदयात्) सन्मार्ग प्रेरित करे ॥

भावार्थः सकल जगत के स्रष्टा, सूर्य के समान सबके अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाले, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के तेजों के ध्यान और धारण करने से वह उपासक की बुद्धियों और क्रियाओं को सन्मार्ग में प्रेरित करके उसे सुखी करता है ।

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य सामवेद

जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं, उन सविता देव के वरण करने योग्य तेज को हम धारण करते हैं ।

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य यजुर्वेद ३.३५

सम्पूर्ण जगत् के जन्मदाता सविता (सूर्य) देवता की उत्कृष्ट ज्योति का हम ध्यान करते हैं, जो (तेज सभी सत्कर्मों को सम्पादित करने के लिए) हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है ॥

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य यजुर्वेद २२.९

सर्वप्रेरक, पापनाशक, वरण करने योग्य, देव (सत् चित् आनन्द) स्वरूप, सविता देव को हम धारण करते हैं वे (उत्पादक प्रेरक देव) हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर चलने (श्रेष्ठ कर्म करने) की प्रेरणा प्रदान करें ॥

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य यजुर्वेद ३०.२

हम उन प्रेरक सविता के तेज को धारण करते हैं जो हमारी बुद्धि (कर्म) को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ॥

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य यजुर्वेद ३६.३

उस प्राण स्वरूप, दुःख नाशक, सुख स्वरूप, प्रकाशवान्, श्रेष्ठ, तेजस्वी, देवत्व प्रदान करने वाले परमात्मा का हम ध्यान करते हैं, जो (वह) हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ॥

भाष्य श्री राम शर्मा आचार्य ऋग्वेद ३.६२.१०

जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं उन सविता देवता के वरण करने योग्य, विकारनाशक, दिव्यता प्रदान करने वाले तेज को हम धारण करते हैं ॥

भाष्य पण्डित राम गोविन्द त्रिवेदी ऋग्वेद ३.०६२.१०

जो सविता हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियों में प्रसिद्ध उस द्योतमन जगत् सृष्टा परमेश्वर के संभजनीय परब्रह्मात्मक तेज का हम लोग ध्यान करते हैं ।

भाष्य महर्षि दयानन्द ऋग्वेद ३.६२.१०

हे मनुष्यों! सब हम लोग (यः) जो (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) उत्तम गुणकर्म और स्वभावों में प्रेरित करे उस (सवितुः) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करनेवाले और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त स्वामी और (देवस्य) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के दाता प्रकाशमान सबके प्रकाश करनेवाले सर्वत्र व्यापक अन्तर्यामी के (तत्) उस (वरेण्यम्) सबसे उत्तम प्राप्त होने योग्य (भर्गः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करनेवाले प्रभाव को (धीमहि) धारण करें ॥

भाष्य महर्षि दयानन्द यजुर्वेद ३.३५

हम लोग (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वा (देवस्य) प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ (भर्गः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करने वाला तेजःस्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) धारण करें और (यः) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देने वाला है, वह अपनी करुणा करके (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों को उत्तम उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे ॥

भावार्थ मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सब से उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यन्त शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करे । किस प्रयोजन के लिये, जिससे वह धारण व प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को खोटे खोटे गुण कर्मों से अलग करके अच्छे अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों में प्रवृत्त करे, इसलिए प्रार्थना का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जैसी प्रार्थना करनी, वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण करना चाहिये ॥

भाष्य महर्षि दयानन्द यजुर्वेद २२ । ९

हे मनुष्यों! (सवितुः) समस्त संसार को उत्पन्न करने हारे (देवस्य) आप से आप ही प्रकाशस्वरूप सबके चाहने योग्य समस्त सुखों के देने हारे परमेश्वर के जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम (भर्गः) समस्त दोषों के दाह करने वाले तेजोमय शुद्धस्वरूप को हम लोग (धीमहि) धारण करते हैं, (तत्) उसको तुम लोग धारण करो (यः) जो (नः) हम सब लोगों की (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरें अर्थात् उनको अच्छे अच्छे कामों में लगावे, वह अन्तर्यामी परमात्मा सबके उपासना करने योग्य है ।

भाष्य महर्षि दयानन्द यजुर्वेद ३० । २

हे मनुष्यों! (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे, उस (सवितुः) समग्र जगत् के उत्पादक सब ऐश्वर्य तथा (देवस्य) सुख के देनेहारे ईश्वर के जो (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम (भर्गः) जिस से दुःखों का नाश हो, उस शुद्ध स्वरूप को जैसे हम लोग (धीमहि) धारण करें वैसे (तत्) ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को तुम लोग भी धारण करो ॥

भाष्य महर्षि दयानन्द यजुर्वेद ३६ । ३

हे मनुष्यों! जैसे हम लोग (भूः) कर्मकाण्ड की विद्या (भुवः) उपासना काण्ड की विद्या और (स्वः) ज्ञान काण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़ के (यः) जो (नः) हमारी (धियः) धारणावती बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे, उस (देवस्य) कामना के योग्य (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के (तत्) उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (भर्गः) सब दुःखों के नाशक तेजःस्वरूप का (धीमहि) ध्यान करें, वैसे तुम लोग भी इसका ध्यान करो ॥

भाष्य जयदेव शर्मा सामवेद

(वरेण्य) सर्वोत्कृष्ट, वरण करने योग्य अनुपम, (भर्गः) अविद्या, अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अज्ञान से पैदा होने हारे तामस अंकुरों को अग्नि और सूर्य के प्रखर तेज के समान भस्म कर डालने हारे तेज का हम (धीमहि) ध्यान करें, धारण करे । (यः) जो परमेश्वर (न) हमारी (धियः) बुद्धियों और कर्म वृत्तियों को (प्रचोदयात्) उत्तम सन्मार्ग को प्रेरित करता है ।

श्लोक

वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽत्रमाहुः कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति ॥ गो पथ ब्राह्मण १.१.३२ ॥

उस उत्पादक परमात्मा देव का परम वरणीय भर्गरूप तेज वेद छन्द है जिसको कवि विद्वान लोग अत्र कहते हैं । और धिय का तात्पर्य कर्म है, हे शिष्य यही मैं तुझको उपदेश करता हूँ कि उन कर्मों द्वारा ही परमात्मा सबको प्रेरित करता है ।

भाष्य जयदेव शर्मा ऋग्वेद

(यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में प्रेरण करता है (सवितुः) सर्वोत्पादक उस (देवस्य) प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक, सर्वदाता, परमेश्वर के (तत्) उस अनुपम (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ (भर्गः) पापों को भून डालने वाले, समस्त कर्म बन्धनों को भस्म करने वाले तेज को (धीमहि) धारण करें और उसी का ध्यान करें ।

जो (नः) हमारे (धियः) समस्त कर्मों को सञ्चालित करता उस सर्वप्रेरक देव, दानशील सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उस सर्व शत्रुतापक तेज और प्रजा भृत्यादि पालक (भर्गः) अत्र को (धीमहि) धारण करें ।

भाष्य जयदेव शर्मा यजुर्वेद ३ । ३५

राजा के पक्ष में

(सवितुः) समस्त देवों के प्रसविता उत्पादक और उत्कृष्ट शासक, आज्ञापक, प्रेरक, (देवस्य) विजेता महाराज के (तत्) उस (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ (भर्गः) पाप के भूने डालने वाले तेज को हम सदा (धीमहि) धारण करें, सदा अपने ध्यान में रक्खें । (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को समस्त कार्य व्यवहारों को (प्रचोदयात्) उत्तम

मार्ग पर संचालित करता है ।

ईश्वर के पक्ष में

समस्त जगत् के उत्पादक और संचालक उस देव परमेश्वर के सर्वश्रेष्ठ, पाप नाशक तेज को हम धारण करें । (यः नः प्रचोदयात्) जो हमें सन्मार्ग में हमें सदा प्रेरित करे ।

भाष्य जयदेव शर्मा यजुर्वेद ३० । २

(सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक और सब के प्रकाशक प्रभु, परमेश्वर के (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करने वाले, एवं सबों को वरण करने योग्य, सर्वोत्तम (भर्गः) पापों को भून डालने वाले तेज का (धीमहि) हम ध्यान करते हैं । (यः) जो (नः) हमारे (धियः) बुद्धियों, कर्मों और स्तुति वाणियों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग में प्रेरित करें ॥

श्री ऋषि कृष्णदत्त जी महाराज

क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणीय माने जाते हैं, प्रत्येक संसार का प्राणी मात्र, उसी परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय स्वीकार करता रहा है और करता रहता है क्योंकि उसका वरण करने के पश्चात् मानव को द्वितीय वरण की आवश्यकता नहीं होती । क्योंकि वह अखण्ड है, गति देने वाला है, इस संसार का वह संचालन कर रहा है, तो वह जो मेरा देव जो संचालन करने वाला है, आज हम उस अपने महामना प्रभु की प्रतिभा का वर्णन करते चले जाएं । मेरे प्यारे प्रभु ने यह संसार मानो एक रचनामयी दृष्टिपात आता रहता है और उसी के कारण ये भिन्न भिन्न रूपों में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है । आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जिस क्षेत्र में ऋषि मुनि बेटा! अपना अध्ययन करते रहे हैं, और उनका जो अध्ययन की जो शैली है वह बड़ी विचित्र रही है, एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके, प्रत्येक वस्तु के ऊपर उनका चिन्तन होता रहा और चिन्तन मानो बाह्य जगत् में, आन्तरिक जगत् में, दोनों जगत् में बेटा! उनकी आभा निहित रही है और उनका क्रियाकलाप महामना देव की आभा में उसके नियन्त्रण में कार्य होता रहा, उनके विचारों में किसी भी प्रकार की विकृतता नहीं होती, उनके विचारों में एक स्थिरता रहती है और वही स्थिरता मानो समाज को, मानव को ऊँचा बना देती है ।

मानव के जीवन में परमपिता परमामा वरण करने योग्य है, जो मानव उसका वरण कर लेता है, वह मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है । आओ! आज हम परमपिता परमामा का और अपने मध्य में जो नाना सन्धियाँ हैं उन सन्धियों को हम एक सूत्र में लाना चाहते हैं परन्तु वह नाना सन्धियाँ क्या हैं? वह जो नाना प्रकार की जो प्रकृति की अमूल्य तरंगें हैं अथवा मूल में मन में विराजमान रहती हैं, उन मूल तरंगों को हम अपने मध्य से दूरी करते हुए ज्ञान और विवेक के द्वारा व्यापक बनाते हुए और उसको आंकुचन करते हुए अथवा अपने मध्य में वह जो प्रभु का परम, सुखद, आनन्द कहलाया जाता है । उस आनन्द को प्राप्त करने के लिए हम नाना प्रकार की जो हम सीमाओं में परिणत रहते हैं । उन सीमाओं से हमें उत्तीर्ण होना है, उन्हें अपने से दूर करना है जिससे हमारे जीवन में महत्ता की तरंगें ओत प्रोत हो जाएं । बेटा! हमारे यहाँ ऋषिजन विद्यमान होकर के अपना अपना चिन्तन करते रहते थे । और उनके जो चिन्तन करने का क्रम विचित्र और महान माना जाता है । वे यह कहा करते हैं कि चिन्तन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि परमपिता परमामा वरणीय है । उसको अपने आप वरण करना चाहिए । अपने में धारण कर लेना चाहिए । प्रत्येक मानव संसार में यह उत्सुकता में लगा हुआ रहता है कि मेरे जीवन में आनन्द की तरंगें ओत प्रोत हो जाएँ । तरंगें मानव को कैसे प्राप्त होती हैं? आनन्द उस काल में प्राप्त होता है जब आनन्द स्वरूप को अपने में धारण कर लेते हैं । मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ । केवल उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके अपना चिन्तन करते रहे हैं । अपने को वरण करते रहे हैं । वैदिक साहित्य में नाना प्रकार का विचार धारायें मानव के हृदयों में निहित रही हैं । मानव का हृदय उसे आलिंगन करता रहा है और अपने में उसे धारण करने की आकांक्षा बनी रहती है । आओ मुनिवरों! आज मैं तुम्हें दार्शनिकों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ । जहाँ दार्शनिकों ने इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की उड़ान उड़ने का प्रयास किया । वह मेरा देव कितना अनुपम है, वह कितना वरणीय है । उसी मानव को मानवता प्राप्त होती है, जो उसे वर लेता है । उसी को वह प्राप्त होने लगता है । इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है, उस परमपिता परमामा को हमें वर लेना चाहिए । जो मानव उसे वर लेता है अथवा उसका वरण कर लेता है, वह उसी के समीप आना प्रारम्भ हो जाता है । इसीलिए आचार्यों ने कहा है कि उस परमपिता परमामा को वरण कर लेना चाहिए । जिस प्रकार यज्ञशाला में यज्ञमान अपने पुरोहित को वरण कर लेता है, ब्रह्मा को वरण करता है, जब वह उसे वर लेता है तो उसका याग सम्पन्न हो जाता है । इसी प्रकार हे मानव! तू अपने आन्तरिक याग को ऊँचा बनाना चाहता है, उसको पूर्ण रूपेण दृष्टिपात करना चाहता है, तो तू अपने प्रभु का वरण कर लें और उसको वरण करके अपने अन्तर्हृदय रूपी गुफा में उसको स्थिर कर ले । जब हृदय रूपी गुफा में उस परमपिता परमामा को तुम दृष्टिपात कर लोगे तो बेटा! उसे अपना स्वामित्व वरणत्व को प्रदान करते हो, तो तुम आत्म याग को पूर्ण कर सकोगे । जैसे मानव बाह्य यज्ञशाला में अग्राधान करता है, मानव उसी प्रकार अपने हृदय में, अन्तर्गुफा में ज्ञान रूपी अग्नि को जागरूक कर लेता है । जब वह ज्ञान रूपी अग्नि जागरूक हो जाती है तो यह जो नाना होता इस मानव शरीर में है यह नाना प्रकार के साकल्य के द्वारा यज्ञशाला में हूत करने लगते हैं, देवता प्रसन्न हो जाते हैं । वे पाँचों ज्योतियाँ जागृत हो जाती हैं । इन ज्योतियों को हम जागरूक करना चाहते हैं । वे पाँच अग्नि भी कहलाती है । बाह्य जगत् में पाँच प्रकार के यागों का चयन होता रहता है । आन्तरिक जगत् में पाँच प्रकार की अग्नियों का स्वरूप मानव के समीप आने लगता है । आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा है? आज मैं तुम्हें उसी स्थली पर ले जाने के लिये आया हूँ, जिस स्थली पर विद्यमान हो करके मानव अपनी आत्म चर्चा करता है । वह कण्ठ और हृदय चक्र की चर्चा करता है । वह अपना वरणीय विषय बना लेता है । और उसको अपना वरण करके अपने और प्रभु में अन्तर्द्वन्द्व को दृष्टिपात नहीं करता । वह अनेकता को एकता के सूत्र में कटिबद्ध करने लगता है और जब अनेकता एकता के सूत्र में कटिबद्ध हो जाती है, तो मानव के हृदय में वह पञ्च अग्नि पञ्च ज्योतियाँ जागरूक हो जाती है । उन पाँचों अग्नियों के प्रकाश में नाना सूर्य आ जाएं परन्तु उसको आच्छादित नहीं कर सकते ।

सहिता पाठ उदात्त अनुदात्त

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

धीमहीति धीमहि । देवस्य धीमहि ॥ धियो यः । भर्गो देवस्य ॥ यो नः । वरेण्यम् भर्गः ॥ नः प्रचोदयात् । सवितुर्वरेण्यम् ॥ प्रचोदयादिति प्रचोदयात् । तत्सवितुः ॥

दण्ड पाठ

ओ३म् तत् सवितुः । सवितुस्तत् ॥ तत् सवितुः । सवितु वरेण्यम् । वरेण्यम् सवितुस्तत् ॥ तत् सवितुः । सवितु वरेण्यम् । वरेण्यम् भर्गः । भर्गो वरेण्यम् सवितुस्तत् ॥ तत् सवितुः । सवितु वरेण्यम् । वरेण्यम् भर्गः । भर्गो देवस्य । देवस्य भर्गो वरेण्यम् सवितुस्तत् ॥ तत् सवितुः । सवितु वरेण्यम् । वरेण्यम् भर्गः । भर्गो देवस्य । देवस्य धीमहि । धीमहि देवस्य भर्गो वरेण्यम् सवितुस्तत् ॥ तत्सवितुः । सवितुर्वरेण्यम् । वरेण्यम् भर्गः । भर्गो देवस्य । देवस्य धीमहि । धीमहीति धीमहि ॥ धियो यः । यो धियः ॥ धियो यः । यो नः । नो यो धियः ॥ धियो यः । यो नः । नः प्रचोदयात् । प्रचोदयान्नो यो धियः ॥ धियो यः । यो नः । नः प्रचोदयात् ॥ प्रचोदयादिति प्रचोदयात् ॥

59. ओ३म् नमः शम्भवायं च । यजुर्वेद १६.४१

संहिता पाठ उदात्त अनुदात्त

देवता रुद्रा छन्द स्वरडार्षी बृहती स्वर मध्यम ।

ओ३म् नमः शम्भवायं च मयोभवायं च नमः शङ्करायं च मयस्करायं च नमः शिवायं च शिवतरायं च ॥ यजुर्वेद १६.४१

भाषार्थः जो सुखस्वरूप, संसार के उत्तम सुखों का देनेवाला, कल्याण का कर्ता, मोक्षस्वरूप धर्मयुक्त कार्यों को ही करने वाला, अत्यन्त मंगलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देनेहारा उसको बारम्बार नमस्कार हो ।

पद पाठ

ओ३म् नमः । शम्भव इति शम्भवे । च । मयोभव इति मयःभवे । च । नमः । शङ्करायेति शम् कुरायं । च । मयस्करायेति मयःऽकुरायं । च । नमः । शिवायं । च । शिवतरायेति शिव तराय । च ॥

क्रम पाठ

ओ३म् नमः शंभवे । शंभवे च । शंभव इति शं भवे । च मयोभवे । मयोभवे च । मयोभव इति मयः भवे । च नमः । नमः शंकुरायं । शंकुरायं च । शंकुरायेति शं कुरायं । च मयस्करायं । मयस्करायं च । मयस्करायेति मयः कुरायं । च नमः । नमः शिवायं । शिवायं च । च शिवतरायं । शिवतरायं च ॥ शिवतरायेति शिव तराय ॥

जटा पाठ

ओ३म् नमश् शम्भवे शम्भवे नमो नमश् शम्भव । शम्भवे च च शम्भवे शम्भवे च । शम्भव इति शम्भवे । च मयो भवे मयोभवे च च मयोभव । मयोभवे च च मयोभवे मयोभवे च । नमो नमश् च मयोभवे मयोभवे च नम । मयोभवे इतिमय भवे । च नमो नमश् च च नमः । नमश् शङ्कराय शङ्कराय नमो नमश् शङ्कराय । शङ्कराय च च शङ्कराय शङ्कराय च । शङ्करायेतिशंकराय । च मयस्कराय मयस्कराय च च मयस्कराय । मयस्कराय च च मयस्कराय मयस्कराय च । मयस्करायेति मयःऽकराय । च नमो नमश् च च नमः । नमश्शिवाय शिवाय नमो नमश्शिवाय । शिवाय च च शिवाय शिवाय च । च शिवतराय शिवतराय च च शिवतराय । शिवतराय च च शिवतराय शिवतराय च ॥ चेति च ॥

घन पाठ

ओ३म् नमश् शम्भवे शम्भवे नमो नमश् शम्भवे च च शम्भवे नमो नमश् शम्भवे च । शम्भवे च च शम्भवे शम्भवे च मयोभवे मयोभवे च शम्भवे शम्भवे च मयोभवे । शम्भव इति शम्भवे । च मयो भवे मयोभवे च च मयोभवे च च मयोभवे च च मयोभवे च । मयोभवे च च मयोभवे मयोभवे च नमो नमश् च मयोभवे मयोभवे च नम । मयोभवे इतिमय भवे । च नमो नमश् च च नमश् शङ्कराय शङ्कराय नमश् च च नमश् शङ्कराय । नमश् शङ्कराय शङ्कराय नमो नमश् शङ्कराय च च शङ्कराय नमो नमश् शङ्कराय च । शङ्कराय च च शङ्कराय शङ्कराय च मयस्कराय मयस्कराय च शङ्कराय शङ्कराय च मयस्कराय । शङ्करायेतिशंकराय । च मयस्कराय मयस्कराय च च मयस्कराय च च मयस्कराय च च मयस्कराय च । मयस्कराय च च मयस्कराय मयस्कराय च नमो नमश् च मयस्कराय मयस्कराय मयस्कराय च नम । मयस्करायेति मयःऽकराय । च नमो नमश् च च नमश्शिवाय शिवाय नमश् च च नमश्शिवाय । नमश्शिवाय शिवाय नमो नमश्शिवाय च च शिवाय नमो नमश्शिवाय च । शिवाय च च शिवाय शिवाय च शिवतराय शिवतराय च शिवाय शिवाय च शिवतराय । शिवतराय च च शिवतराय शिवतराय च । चेति च ॥

60. ओ३म् सदसि सी दैता । यजुर्वेद तैत्तरीय १.१.११.२

संहिता पाठ उदात्त अनुदात्त पाठ

ओ३म् सदसि सी दैता – असदन् – थ्सुकृ तस्य लोकेता विष्णो पाहि पाहि यज्ञम् पाहि यज्ञ पतिम् पाहिमाम्य यज्ञ नियम् ॥

घन पाठ

ओ३म् सदसि सीद सीद सदसि सदसि सी दैता ऽएतास् सीद सदसि सदसि सी दैता । सीदैता ऽएतास् सीद सी दैता ऽअसदन् नसदन् नेतास् सीद सी दैता ऽअसदन्न एता ऽअसदन् नसदन् नेता ऽएता ऽअसदन् ऽथ्सुकृतस्य सुकृतस्या सदन् नेता ऽएता – असदन् थ्सुकृतस्य । असदन् – थ्सुकृतस्य सुकृतस्या सदन् नसदन् ऽथ्सुकृतस्य लोके लोके सुकृतस्य सदन् नसदन् ऽथ्सुकृतस्य लोके । सुकृतस्य लोके लोके सुकृतस्य लोके तास् ता लोके सुकृतस्य लोके ता । सुकृतस्येति – सु कृतस्य । लोके तास् ता लोके लोके ता विष्णो विष्णो ता लोके लोके ता विष्णो । ता विष्णो विष्णो तास् ता विष्णो पाहि पाहि विष्णो तास् ता विष्णो पाहि । विष्णो पाहि पाहि विष्णो विष्णो पाहि पाहि पाहि पाहि विष्णो विष्णो पाहि पाहि विष्णो इति विष्णो । पाहि पाहि पाहि पाहि पाहि पाहि यज्ञम् यज्ञम् पाहि पाहि पाहि पाहि यज्ञम् । पाहि यज्ञम् यज्ञम् पाहि पाहि यज्ञम् पाहि पाहि यज्ञम् पाहि पाहि यज्ञम् पाहि । यज्ञम् पाहि पाहि यज्ञम् यज्ञम् पाहि यज्ञ पतिम् यज्ञ पतिम् पाहि यज्ञम् यज्ञम् पाहि यज्ञ पतिम् । पाहि यज्ञ पतिम् यज्ञ पतिम्

पाहि पाहि यज्ञ पतिम् पाहि पाहि यज्ञ पतिम् पाहि पाहि यज्ञ पतिम् पाहि । यज्ञ पतिम् पाहि पाहि यज्ञ पतिम् यज्ञ पतिम् पाहि माम् माम् पाहि यज्ञ पतिम् यज्ञ पतिम् पाहि माम् । यज्ञ पति मिति यज्ञ – पतिम् । पाहि माम् माम् पाहि पाहि माम् यज्ञ नियम् यज्ञ नियम माम् पाहि पाहि माम् यज्ञ नियम् । माम् यज्ञ नियम् यज्ञ नियम् माम् माम् यज्ञ नियम् । यज्ञ निय मिति यज्ञ ऽनियम् ॥

61. ओ३म् नमस्ताराय नम शम्भवे च । यजुर्वेद तैत्तरीय ४.५.८.१

संहिता पाठ उदात्त अनुदात्त पाठ

ओ३म् नमस्ताराय नम शम्भवे च मयोभवे च नम शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय ॥

घन पाठ

ओ३म् नमस्ताराय ताराय नमो नमस्ताराय नमो नम स्ताराय नमो नमस्ताराय नम । ताराय नमो नमस्ताराय ताराय नमश्शम्भवे शम्भवे नमस्ताराय ताराय नमश्शम्भवे । नमश्शम्भवे शम्भवे नमो नमश्शम्भवे च च शम्भवे नमो नमश्शम्भवे च । शम्भवे च च शम्भवे शम्भवे च मयोभवे मयोभवे च शम्भवे शम्भवे च मयोभवे । शम्भ्व इति शम्भवे । च मयो भवे मयोभवे च च मयोभवे च च मयोभवे च च मयोभवे च । मयोभवे च च मयोभवे मयोभवे च नमो नमश्च मयोभवे मयोभवे च नम । मयोभवे इतिमय भवे ।

च नमो नमश्च च नमश्शङ्कराय शङ्कराय नमश्च च नमश्शङ्कराय । नमश्शङ्कराय शङ्कराय नमो नमश्शङ्कराय च च शङ्कराय नमो नमश्शङ्कराय च । शङ्कराय च च शङ्कराय शङ्कराय च मयस्कराय मयस्कराय च शङ्कराय शङ्कराय च मयस्कराय । शङ्करायेतिशङ्कराय । च मयस्कराय मयस्कराय च च मयस्कराय च च मयस्कराय च च मयस्कराय च । मयस्कराय च च मयस्कराय मयस्कराय च नमो नमश्च मयस्कराय मयस्कराय मयस्कराय च नम । मयस्करायेति मयःऽकराय । च नमो नमश्च च नमश्शिवाय शिवाय नमश्च च नमश्शिवाय । नमश्शिवाय शिवाय नमो नमश्शिवाय च च शिवाय नमो नमश्शिवाय च । शिवाय च च शिवाय शिवाय च शिवतराय शिवतराय च शिवाय शिवाय च शिवतराय ।

62. संहिता पाठ

इस लेख में हम वेदों के ‘संहितापाठ’ के बारे में जानेंगे । वेदवाणी का प्रथम पाठ, जो गुरुओं की परम्परा से अध्ययनीय है और जिसमें वर्णों तथा पदों की एकश्वासरूपता अर्थात् अत्यंत सानिध्य के लिए सम्प्रदायानुगत सन्धियों तथा अवसान (निश्चित स्थलों पर विराम) से युक्त एवम् १. उदात्त, २. अनुदात्त तथा ३. स्वरित इन तीन स्वरों में अपरिवर्तनीयता से पठनीय वेदपाठ को ‘संहिता’ कहते हैं । इसका स्वरूप है ।

यह संहिता नामक वेदपाठ पुण्यप्रदा यमुना नदी का स्वरूप है तथा संहितापाठ से यमुना के स्नान का फल मिलता है कालिन्दी संहिता श्रेया । (याज्ञवल्क्यशिक्षा) । ऋषियों ने मन्त्रों के संहिता रूप वेदपाठ का ही दर्शन किया और यज्ञ, देवता स्तुति आदि कार्यों में वेद के संहितापाठ का ही प्रयोग किया जाता है ।

63. वेद गानम् वर्तमान साहित्य में उपलब्धता

जैसे ज्ञ देवनागरी वर्णमाला में 'ज्' और 'ज' के योग से इसी तरह क्ष 'क्' व 'ष' बना हुए अक्षर है ।

वेद पाठ करते समय अंतराल को अवश्य ध्यान रखें । जैसे इदन्न मम्, ही बोलें इदन्नमम् सही उच्चारण नहीं है । मन्त्र उच्चारण करते समय शब्द ध्वनि, उनके अन्तराल व स्वरों का बोध उन श्रोताओं व स्वयं को अवश्य ही होना चाहिए जो ध्यान पूर्वक श्रवण कर रहें हैं । प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में ओ३म् रूपी सूत्र अवश्य ही उच्चारण करें । वेद का उच्चारण, वाचन, पठन पाठन व गान गाने वालों को संस्कृत की वर्णमाला, जो कि स्वर, व्यञ्जन, अनुस्वार व वैदिक ध्वनि उच्चारण चिह्न मिलकर बनी है, वेद पाठ के लिये सही उच्चारण का ज्ञान अवश्य ही होना चाहिए ।

वेद गायन ध्वनि व समय अन्तराल की दृष्टि से ह्रस्व अल्पकालीन स्वर है । इसका उच्चारण एक मात्रिक होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी एक बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण करना चाहिए । दीर्घ लिंबे समय तक का उच्चारण द्विमात्रिक होता है अर्थात् जितने समय में कलाई की नाड़ी दो बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण करना चाहिए । प्लुत अधिक लिंबे समय तक इसका उच्चारण त्रिमात्रिक होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी तीन बार धड़कती है उतने समय तक उच्चारण करना चाहिए । जैसे ओ३म् । जो शब्द जैसे लिखा हो उसे वैसा ही बोलें ।

वेद पाठ की गायन शैली की परम्परागत वैदिक विद्यालयों में धैर्य और कठिन परिश्रम के साथ विद्या प्राप्त की जा सकती है ।

वेद गान के भिन्न भिन्न प्रकार हैं । इन पाठों का मूल पाठ पद पाठ होता है । पंडित दामोदर सातवेलेकर जी के सोलहवें वेद व्याख्यान को प्रमाणित मान करके विभिन्न पाठों का निर्माण करने का यह एक प्रयत्न है । जिसमें उन्होंने पच्चीस प्रकार के पाठों का वर्णन किया है जैसे संहिता पाठ, उदात्त अनुदात्त पाठ, सक्रम पद पाठ, व्युत्क्रम पद पाठ, क्रम पाठ, जटा पाठ, घन पाठ, शिखा पाठ, पञ्च सन्धि पाठ, माला पाठ, क्रम माला पाठ, ध्वज पाठ, दण्ड पाठ, रेखा पाठ, अर्धार्चः पाठ (जुगलबन्दी), मण्डुकप्लुत पद पाठ (जुगलबन्दी), द्वि चक्री रथ पाठ, त्रि चक्री रथ पाठ, चतुष चक्री रथ पाठ इत्यादि ।

सामवेद में आरण्यं गानम्, ग्राम गानम्, उह गान व उह्य गान भी गाया जाता है ।

कृष्णदत्त जी शृङ्गी ऋषि महाराज द्वारा कुछ अन्य पाठ भी वर्णित किए गए हैं । कृतिकि पाठ, विसर्ग पाठ, मधु पाठ, उदात्त अनुदात्त, माला पाठ, मल्हार गान, मेघावली राग, मेघा राग, मोहिनी राग, मेघों का राग व दीपमालिका गान आदि के गायन करने वाले अभी समाज के स्तर पर प्राप्त नहीं होते क्योंकि यह विद्या प्राणों के परस्पर मिलान करने से ही सिद्ध होती है । जो कि हिमालय की कन्दराओं में आदि ऋषियों से प्राप्त की जा सकती हैं ।

तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि कागभुषुण्ड जी उपस्थित हुए ओर कागभुषुण्ड जी ने उपस्थित हो करके यह कहा चरणा मंगल गान गाया, देखो, वाम देव जो वेदमन्त्रों में वाम देव कहते हैं, जो मुनिवरों! देखो, जो सामगान है, मानो देखो, वामदेव गान गाया, और वामदेव गान गा करके, उन्होंने उच्चारण किया ।

वेदों में स्वरों और छंदों, स्वर और व्यञ्जन सहित गायन की विद्या की मेरी जानकारी वैदिक छात्रों की दृष्टि में ही अभी प्रारम्भिक अवस्था में है यह लेख एक साधारण मानव

के लिए सुलभ इस सूक्ष्म विषय की तकनीकी चर्चा करने के लिए बनाया जा रहा है ।

पदों को संधि सहित या संधि रहित करने के उपरान्त पूर्ववर्ती शब्द के अन्तिम अंश के व परवर्ती शब्द के प्रथम अंश में शब्दों के स्थान परिवर्तन के कारण वैदिक व्याकरण की दृष्टि से उनमें परिवर्तन हो जाता है । वेद पाठ के अनुसार यह परिवर्तन अनुदात्त, उदात्त और स्वरित चिह्नों में भी आता है । इसे अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए ।

महर्षि पाणिनी और महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इनके मुख्य मुख्य नियमों का समावेश किया है । इन्होंने इस पूर्ण समुद्र रूपी विज्ञान को जाना है ।

उदात्तादि स्वरों की सत्ता वैदिक भाषा की विशेषता है । वेद के वास्तविक अभिप्राय तक पहुँचने के जितने साधन हैं, उनमें स्वर शास्त्र सबसे प्रधान है । व्याकरण और निरुक्त जैसे प्रमुख शास्त्र भी स्वर शास्त्र के अंग बनकर ही वेदार्थ ज्ञान में सहायक होते हैं । स्वर शास्त्र का विरोध होने पर ये दोनों शास्त्र पंगु बने रहते हैं । स्वर ज्ञान के बिना न केवल मंत्र का वास्तविक अभिप्राय ही अज्ञात रहता है, अपितु स्वर शास्त्र की उपेक्षा से अनेक स्थानों में अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है । इसलिए वेद के सूक्ष्मांतक अभिप्राय तक पहुँचने के लिए उदात्त आदि स्वरों का ज्ञान नितांत आवश्यक है ।

स्वर शब्द लौकिक और वैदिक वाङ्मय में भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है । वाक् वर्ण विशेष अत्+ऋणादि संगीत शास्त्र के स्वर यण, प्राण, सूर्य, प्रणव, उदात्तादि ध्वनि विशेष प्रस्तुत संदर्भ में स्वर शब्द से वैदिक वाङ्मय में प्रसिद्ध उदात्त, अनुदात्त, स्वरित संज्ञक उच्चारण विषयक वर्ण वर्गों का ग्रहण होता है ।

वैदिक वाङ्मय में उदात्त आदि स्वरों के अनेक भेद उल्लिखित हैं, कहीं सात, कहीं पाँच, कहीं चार, कहीं तीन, कहीं दो और कहीं एक ही स्वर का उल्लेख मिलता है । महाभाष्य में सात स्वर गिनाये गए हैं । नाटक शिक्षा में ५ स्वर ।

उदात्ताश्चानुदात्तश्चस्वरितप्रचितोत्था निपातश्चेति विधेय स्वरभेदस्तु पंचमः ।

साधारणतया निपात शब्द अनुदात्त अर्थ में प्रसिद्ध है, शाकल, माध्यन्दिन, कण्व, कौथुम, आदि संहिताओं में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीन स्वरों का ही उच्चारण होता है । प्रचय स्वर का भी उल्लेख है ।

स्वर शास्त्र के अनुसार उदात्त आदि समस्त स्वर उच्चारण वर्ण स्वर अर्थात् अच् संज्ञक वर्णों के धर्म हैं, व्यंजनों के नहीं । अच् ही ऐसे वर्ण हैजिनका उच्चारण बिना अन्य वर्ण की सहायता के होता है ।

स्वयं सजन्त इति स्वराः । महाभाष्य ११ । २ । ३०

उदात्त अनुदात्त और स्वरित स्वरों के लक्षण और उनके उच्चारण की विधि का उल्लेख अनेक ग्रंथों में मिलता है ।

पाणिनीय मत उच्चैः उदात्तः, नीचैः अनुदात्तः, समाहारः स्वरितः । महाभाष्य ११ । २ । ३१

जिस स्वर के उच्चारण में आयाम हो, उसे उदात्त कहते हैं, आयाम का अर्थ है, मात्रों का स्वर की तरफ खींचा जाना । जिस स्वर के उच्चारण में विलिंब हो, उसे अनुदात्त कहते हैं । मात्रों की शिथिलता या उनका अधोगमन विश्राम कहलाता है । जिस स्वर के उच्चारण में आक्षेप हो, उसे स्वरित कहते हैं, आक्षेप का अर्थ है मात्रों का निचैरगमन । इस प्रकार के निर्देशन के आधार पर ही शुद्ध उच्चारण कर पाना कठिन ही है । इन स्वरों का सूक्ष्म उच्चारण प्रकार चिरकाल से लुप्तप्राय है, महाराष्ट्र में कुछ बृहद् ऋग्वेदीय ब्राह्मण स्वरों के सूक्ष्म उच्चारण में कदाचित् समर्थ होते, परन्तु अधिकतर श्रोत्रिय हस्त आदि अंगचालन के द्वारा ही उदात्त आदि स्वरों का द्योतन करते हैं ।

64. प्रातिशाख्य

प्रातिशाख्य शब्द का अर्थ है: 'प्रति' अर्थात् तत्तत् 'शाखा' से संबंध रखने वाला शास्त्र अथवा अध्ययन । यहाँ 'शाखा' से अभिप्राय वेदों की शाखाओं से है । वैदिक शाखाओं से संबद्ध विषय अनेक हो सकते थे । उदाहरणार्थ, प्रत्येक वैदिक शाखा से संबद्ध कर्मकांड, आचार आदि की अपनी अपनी परंपरा थी । उन सब विषयों से प्रातिशाख्यों का संबंध न होकर केवल वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण, वैदिक संहिताओं और उनके पदपाठों आदि के संधिप्रयुक्त वर्णपरिवर्तन अथवा स्वरपरिवर्तन के पारस्परिक संबंध और कभी कभी छंदो विचार जैसे विषयों से था । यहाँ वैदिक शाखाओं के प्रारंभ, स्वरूप और प्रवृत्ति को संक्षेप में समझ लेना आवश्यक है । भारतीय वैदिक संस्कृति के इतिहास में एक समय ऐसा आया जबकि आर्य जाति के मनीषियों ने परंपरा प्राप्त वैदिक मंत्रों को वैदिक संहिताओं के रूप में संगृहीत किया । उस समय अध्ययनाध्यापन का आधार केवल मौखिक था । गुरु शिष्य की श्रवण परंपरा द्वारा ही वैदिक संहिताओं की रक्षा हो सकती थी । देश भेद और काल भेद से वैदिक संहिताओं की क्रमशः विभिन्न शाखाएँ हो गईं । वैदिक मंत्रों और उनकी संहिताओं को प्रारंभ से ही आर्य जाति की पवित्रतम निधि समझा जाता रहा है । उनकी सुरक्षा और अध्ययन की ओर आर्य मनीषियों का सदा से ध्यान रहा है । वैदिक संहिताओं की सुरक्षा और अर्थज्ञान की दृष्टि से ही वैदिक विद्वानों ने तत्तत् संहिताओं के पदपाठ का निर्माण किया । कुछ काल के अनंतर क्रमशः क्रमपाठ आदि पाठों का भी प्रारंभ हुआ । प्रत्येक शाखा का यह प्रयत्न रहा कि वह अपनी अपनी परंपरा में वैदिक संहिताओं के शुद्ध उच्चारण की सुरक्षा करे और पदपाठ एवं यथासंभव क्रमपाठ की सहायता से वेद के प्रत्येक पद के स्वरूप का और संहिता में होने वाले उन पदों के वर्णपरिवर्तनों और स्वरपरिवर्तनों का यथार्थतः अध्ययन करे । मूलतः प्रातिशाख्यों का विषय यही था । कभी कभी छंदोविषयक अध्ययन भी प्रातिशाख्य की परिधि में आ जाता था । वैदिक शाखाओं के अध्येतृवर्ग 'चरण' कहलाते थे । इन चरणों की विद्वत्सभाओं या विद्यासभाओं को 'परिषद्' कहा जाता था । प्रातिशाख्यों की रचना बहुत करके सूत्र शैली में की जाती थी इसीलिए प्रातिशाख्यों के लिए प्रायेण 'पार्षदसूत्र' का भी व्यवहार प्राचीन ग्रंथों में मिलता है । यास्काचार्य के निरुक्त में कहा गया है: अर्थात्, पदों के आधार पर संहिता रहती है और सब शाखाओं के प्रातिशाख्यों की प्रवृत्ति पदों को ही संहिता का आधार मानकर हुई है । इससे यह ध्वनि निकलती है कि प्राचीन काल में सब वैदिक शाखाओं के अपने अपने प्रातिशाख्य रहे होंगे । संभवतः वैदिक शाखाओं समान, उनके प्रातिशाख्य भी लुप्त हो गए । वर्तमान उपलब्ध विशिष्ट प्रातिशाख्य नीचे दिए जाते हैं ।

यास्काचार्य के निरुक्त में कहा गया है : पदप्रकृतिः संहिता । पदप्रकृतिनि सर्व चरणानां पार्षदानि । (नि. 1/17) ।

अर्थात्, पदों के आधार पर संहिता रहती है और सब शाखाओं के प्रातिशाख्यों की प्रवृत्ति पदों को ही संहिता का आधार मानकर हुई है ।

इससे यह ध्वनि निकलती है कि प्राचीन काल में सब वैदिक शाखाओं के अपने अपने प्रातिशाख्य रहे होंगे । संभवतः वैदिक शाखाओं समान, उनके प्रातिशाख्य भी लुप्त हो गए । वर्तमान उपलब्ध विशिष्ट प्रातिशाख्य नीचे दिए जाते हैं ।

प्रातिशाख्यों का विषय:

वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण,
पदपाठ एवं यथासंभव क्रमपाठ की सहायता से वेद के प्रत्येक पद के स्वरूप का और संहिता में होने वाले उन पदों के वर्ण परिवर्तनों और स्वर परिवर्तनों का यथार्थतः अध्ययन
कभी कभी छंदोविचार जैसे विषय भी इनके विषय रहे हैं ।

उपलब्ध प्रातिशाख्य:

शौनकाचार्यकृत ऋग्वेद प्रातिशाख्य
कात्यायनाचार्य कृत वाजसनेयि प्रातिशाख्य

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य

अथर्ववेद प्रातिशाख्य अथवा शौनकीय चतुराध्यायिका

शौनकाचार्यकृत ऋग्वेद प्रातिशाख्य

परम्परा के अनुसार इसको ऋग्वेदीय शाकल शाखा की अवान्तर शैशिरीय शाखा से सम्बन्ध बतलाया जाता है ।
प्रातिशाख्यों में यह सबसे बड़ा प्रातिशाख्य है ।
इसमें छह छह पटलों के तीन अध्याय हैं ।
वैसे प्रातिशाख्य पद्यों में निर्मित है । पर व्याख्याकारों ने पद्यों को टुकड़ों में विभक्त कर सूत्ररूप में ही उनकी व्याख्या की है ।
इस प्रातिशाख्य के प्रथम 1 15 अध्यायों में शिक्षा और व्याकरण से संबंधित विषयों (वर्णविवेचन, वर्णोच्चारण के दोष, संहितागत वर्णसंधियाँ, क्रमपाठ आदि) का प्रतिपादन है
अंत के तीन (16 18) अध्यायों में छंदों की चर्चा है । छंदों के विषय का प्रतिपादन, यह ध्यान में रखने की बात है, किसी अन्य प्रातिशाख्य में नहीं है ।
क्रमपाठ का विस्तृत प्रतिपादन (अध्याय 10 और 11 में) भी इस प्रातिशाख्य का एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है ।
इस प्रातिशाख्य पर प्राचीन उवटकृत भाष्य प्रसिद्ध है ।
प्रोफेसर M.A, Regnier द्वारा किया गया फ्रेंच भाषा में (1857 1859) अनुवाद उपलब्ध हैं ।
प्रो० मैक्सम्यूलर द्वारा किया गया जर्मन भाषा में (1856 1869) अनुवाद उपलब्ध हैं ।

कात्यायनाचार्य कृत वाजसनेयि प्रातिशाख्य

इस प्रातिशाख्य का संबंध शुक्ल यजुर्वेद से है ।
यह प्रातिशाख्य सूत्रशैली में निर्मित है ।
इस प्रातिशाख्य में आठ अध्याय हैं ।
इस प्रातिशाख्य में प्रातिशाख्यीय विषय के साथ इसमें पदों के स्वर का विधान (अध्याय 2 तथा 6) और पदपाठ में अवग्रह के नियम (अध्याय 5) विशेष रूप से दिए गए हैं ।
इस प्रातिशाख्य में पाणिनि की घु, घ जैसी संज्ञाओं के समान ‘सिम्’ (उसमानाक्ष), ‘जित्’ (क, ख, च, छ आदि) आदि अनेक कृत्रिम संज्ञाएँ दी हुई हैं । यह इस प्रातिशाख्य का एक वैशिष्ट्य है
अनेक प्राचीन आचार्यों के साथ साथ इस प्रातिशाख्य में शौनक आचार्य का भी उल्लेख है ।
इस प्रातिशाख्य पर भी अन्य टीकाओं के साथ साथ उवट की प्राचीन व्याख्या प्रसिद्ध है ।
इस प्रातिशाख्य पर प्रोफेसर A. Waber का जर्मन भाषा में अनुवाद (1858) उपलब्ध है ।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य

इस प्रातिशाख्य का संबंध कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से है ।
यह प्रातिशाख्य भी सूत्रशैली में निर्मित है ।
इस प्रातिशाख्य में 24 अध्याय हैं ।
इस प्रातिशाख्य में सामान्य प्रातिशाख्यीय विषय के अतिरिक्त (अध्याय तीन और चार में) पदपाठ की विशेष चर्चा की गई है ।
इस प्रातिशाख्य में 20 प्राचीन आचार्यों का उल्लेख है । यह इसकी एक विशेषता है
इस प्रातिशाख्य की कई प्राचीन व्याख्याएँ, त्रिभाष्यरत्न प्रसिद्ध हैं ।
इस प्रातिशाख्य का प्रोफेसर W.D. Whitney कृत अंग्रेजी अनुवाद (1871) उपलब्ध हैं ।

अथर्ववेद प्रातिशाख्य अथवा शौनकीय चतुराध्यायिका

अथर्ववेद प्रातिशाख्य का संबंध अथर्ववेद की शौनक शाखा से है ।
अथर्ववेद प्रातिशाख्य भी सूत्रशैली में और चार अध्यायों में है ।

अथर्ववेद प्रातिशाख्य का आलोचनात्मक संस्करण, अंग्रेजी अनुवाद के सहित, प्रो० W.D. Whitney ने 1862 में प्रकाशित किया था ।

ऋक्तंत्र नाम से एक साम प्रातिशाख्य प्रकाशित हो चुका है ।

तीन प्रपाठकों में एक अथर्व प्रातिशाख्य प्रकाशित हो चुका है ।

वैदिक शाखाओं के अध्येतृवर्ग 'चरण' कहलाते थे ।

चरणों(अध्येतृवर्ग) की विद्वत्सभाओं को 'परिषद्' (या 'पर्षद्') कहा जाता था ।

प्रातिशाख्यों की रचना अधिकतर सूत्र शैली में की जाती थी इसीलिए प्रातिशाख्यों के लिए प्रायेण 'पार्षदसूत्र' शब्द का भी व्यवहार प्राचीन ग्रंथों में मिलता है ।

निरुक्त में कहा गया है : पदप्रकृतिः संहिता । पदप्रकृतिनि सर्व चरणानां पार्षदानि ।' (नि. 1/17)

अर्थात्, पदों के आधार पर संहिता रहती है और सब शाखाओं के प्रातिशाख्यों की प्रवृत्ति पदों को ही संहिता का आधार मानकर हुई है ।

65. शुद्ध वेदपाठ के कुछ नियम

वेदों की भाषा संस्कृत है । सर्वप्रथम हम संस्कृत भाषा के कुछ विशेष अक्षरों के नाम तथा उनके उच्चारण की विधि लिखते हैं ।

इस (ँ) आकृति वाले अक्षर को "अनुस्वार" कहा जाता है तथा नाक से वायु निकालते हुए बोला जाता है, उस समय मुँह बन्द रहता है, जैसे रामं ।

इस (ँ) आकृति वाले अक्षर को "अनुनासिक" कहा जाता है और यह अक्षर भी नासिका से वायु निकालते हुए बोला जाता है । उस समय मुँह से भी कुछ वायु निकलती है । जैसे बोलूँ, कहूँ ।

यह ॐ अक्षर "अयोगवाह ह्रस्व" कहा जाता है । इस अक्षर का उच्चारण कांसे के पात्र पर डण्डा मारने से जो ध्वनि निकलती है वैसे होता है जैसे "अग्र आयूषि ॐ ।

यह ॐ अक्षर "अयोगवाह दीर्घ" कहा जाता है । इस अक्षर का उच्चारण भी कांसे के पात्र पर डण्डा मारने से जो ध्वनि निकलती है वैसे होता है किन्तु इसका उच्चारण लम्बा करना चाहिए जैसे सर्व वै पूर्णः... ।

इस (ऌ) अक्षर को "यम" कहते हैं । इसका उच्चारण हिन्दी के ड और ल को मिलाकर करने के समान होता है अर्थात् जीभ को ऊपर से नीचे पटकते हुए किया जाता है ।

इस (ऎ) अक्षर को "विसर्ग" कहा जाता है इसका उच्चारण "ह" अक्षर से मिलता है जैसे रामः ।

यह (ऐ) चिह्न "अवग्रह" कहा जाता है । यह चिह्न खाली स्थान का प्रतीक है । इसका उच्चारण कुछ भी नहीं होता ।

किसी अक्षर के नीचे (ॣ) इस प्रकार की टेढ़ी लकीर होती है उसे "हलन्त" कहते हैं । जिस अक्षर के नीचे हलन्त हो उस अक्षर को बिना स्वर के अर्धमात्रिक रूप से बोलना चाहिए यथा तस्मात्, सम्यक्, विद्वान् आदि ।

इस (ष) अक्षर को "मूर्धन्य षकार" कहते हैं । इसका उच्चारण मुँह में मूर्धा स्थान अर्थात् तालु के ऊपर से जीभ लगाकर करना चाहिए । इस (श) अक्षर को "तालव्य शकार" कहते हैं । इस अक्षर को मुँह के अन्दर तालु स्थान से अर्थात् दान्तों के ऊपर वहाँ से जीभ लगाकर उच्चारण करना चाहिए ।

इस (स) अक्षर को "दन्त्य सकार" कहते हैं । इसका उच्चारण दान्तों में जीभ लगाकर करना चाहिए ।

संस्कृत भाषा में (ज) इस आकृति वाले अक्षर में तीन अक्षर मिले होते हैं, वे हैं (ज् + ज् + अ) अतः इसका उच्चारण ज् + ज् + अ को ही मिला कर करना चाहिए न कि (ग्य) या (ग्र) या (द्न) ।

संस्कृत भाषा में अ, इ, उ, ऋ, ल, ए, ओ, औ आदि अक्षर स्वर कहलाते हैं । इनके तीन भेद ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत होते हैं ।

ह्रस्व इसका उच्चारण "एकमात्रिक" होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी एक बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण करना चाहिए ।

उदाहरण अ, इ, उ । दीर्घ इसका उच्चारण "द्विमात्रिक" होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी दो बार धड़कती है उतने समय में इसका उच्चारण

करना चाहिए । उदाहरण आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ । प्लुत इसका उच्चारण "त्रिमात्रिक" होता है अर्थात् जितने समय में हाथ की कलाई की नाड़ी तीन बार धड़कती है

उतने समय तक उच्चारण करना चाहिए । उदाहरण ओ३म् । १४. संस्कृत भाषा में क्, ख्, ग्, घ् आदि अक्षर व्यञ्जन कहलाते हैं । ये सभी व्यञ्जन अर्धमात्रिक होते हैं, और

इनका उच्चारण बिना स्वर के नहीं हो सकता । संस्कृत और हिन्दी भाषा में व्यञ्जनों का उच्चारण प्रायः व्यञ्जन के साथ स्वर को मिलाकर सिखाया जाता है जैसे क् + अ =

क, ख् + अ = ख, इत्यादि । बिना स्वर को संयुक्त किये व्यञ्जनों का उच्चारण ठीक प्रकार से होना कठिन होता है ।

व्यञ्जन (आधे अक्षर) को पूरा न बोलें यथा तत् को तत, स्वः को सवः न बोलें । इसी प्रकार से स्वर सहित पूरे अक्षर को आधा न बोलें जैसे मम को मम्, बह्म को बह्म ।

ये अशुद्ध उच्चारण हैं ।

दीर्घ अक्षरों को ह्रस्व अक्षरों के समान न बोलें यथा 'भूः' का भुः, 'भूतस्य' को भुतस्य, "पृथिवी" को पृथिवि न बोलें ।

जो शब्द जैसे लिखा हो उसे वैसा ही बोलें यथा 'भुवः' को भवह और 'करतलकरपृष्ठे' को कर्तलकपृष्ठे न बोलें । 'यो३स्मान्' में आये इस ३ स्वर चिह्न को प्लुत न बोलें ।

(१) विराम चिह्न पर जहाँ मन्त्र का एक भाग समाप्त होता है, वहाँ थोड़ा रुकें । यथा ओम् अग्रये स्वाहा । इदं यहाँ (१) विराम चिह्न पर रुकें । और जहाँ मन्त्र के मध्य

में (,) ऐसा चिह्न आये वहाँ पर भी थोड़ा सा रुकें, यथा 'इदमग्रये इदन्न मम' यहाँ (,) इस चिह्न पर थोड़ा सा रुकें ।

वेद मन्त्र के अन्तिम भाग को भी उसी गति से बोलें, जिस गति से पहले भाग को बोला गया है यथा 'ओ३म् अग्रये स्वाहा । इदमग्रये इदन्न मम ।' यहाँ 'इदमग्रये इदन्न

मम' को शीघ्र न बोलें अपितु पूर्वगति के समान धीरे धीरे ही बोलें ।

दो पृथक् शब्दों को मिलाकर (एक बनाकर) न बोलें । यथा 'स दाधार' को सदाधार तथा 'स नो' को सनो बोलना अशुद्ध है ।

ऋ अक्षर को र वा रि के समान न बोलें यथा 'हृदयम्' को हिरदयम्, 'सृष्टि' को सरिष्टि या सिरिष्टि बोलना अशुद्ध है ।

एक कर्म के मन्त्र समूह यथा 'ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना', 'स्वस्तिवाचन', 'शान्तिकरण', 'अघमर्षण', 'मनसापरिक्रमा', 'उपस्थान' आदि में आये मन्त्रों के प्रथम मन्त्र के पूर्व ही "ओ३म्" का उच्चारण करें, न कि प्रत्येक मन्त्र के पूर्व। ओ३म् को 'प्लुत' लम्बा करके भी बोलें। किसी भी मन्त्र से यज्ञ में आहुति देते समय मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' ही बोलें। स्वाहा से पूर्व 'ओ३म्' को न जोड़े।

66. पद पाठ

इस लेख में हम वेदों के पदपाठ के बारे में जानेंगे। वेदमंत्रों का सस्वर पाठ 'पदपाठ' कहा जाता है। वेद की संहितापाठ की परम्परा के अनुसार स्वरवर्णों की सन्धि का विच्छेद करके वैदिक मन्त्रों का सस्वर पाठ पदपाठ कहा जाता है। स्वर के सम्बन्ध के अनुसार पद के ग्यारह प्रकार होते हैं। शिक्षा ग्रन्थों में कहा गया है नव पदशय्या एकादश पदभक्तयः।

वेदमन्त्रों का पदपाठ पुण्यप्रदा सरस्वती देवनदी का स्वरूप है। पदपाठ करने से सरस्वती के स्नान का फल प्राप्त होता है पदमुक्ता सरस्वती (याज्ञवल्क्यशिक्षा)। तैत्तिरीय आदि अनेक शाखाओं में संहिता के प्रत्येक पद का पद पाठ में साम्प्रदायिक उच्चारण है। ऋग्वेद में भिन्न पदगर्भित पदों में अनानुपूर्वी संहिता को स्पष्ट पदस्वरूप देकर पढ़ा जाता है। शुक्लयजुर्वेद की शाखाओं में प्रातिशाख्य के नियमों के अनुसार एकाधिक बार आए हुए विशेष पदों को पदपाठ में विलुप्त कर दिया जाता है। शास्त्रीय परिभाषा में ऐसे विलुप्त पदों को गलत्पद और ऐसे स्थल के पाठ को संक्रम कहा जाता है।

प्रगृह्य समाप्त होने वाले पदों के आगे पद पाठ में आद्युदात्त इति का प्रयोग किया जाता है। पदपाठ में प्रत्येक पद को अलग करने के साथ यदि कोई पद दो पदों के समास से बना हो, तो उसे माध्यान्दिनीय शाखा में इतिकरण के साथ दोहरा करके स्पष्ट किया जाता है। प्रातिशाख्य के नियमों के अनुसार कतिपय विभक्तियों में तथा वैदिक लोप, आगम, वर्ण विकार, प्रकृतिभाव आदि में भी 'इतिकरण' के साथ पद का मूल स्वरूप स्पष्ट किया जाता है।

पदपाठ में स्वर वर्णों की सन्धि का विच्छेद तथा अवग्रह आदि विशेष विधियों के प्रभाव से यह पाठ, संहिता से भी अधिक कठिन हो जाता है। इन नियमों के कारण ही यह पदच्छेद नहीं है, किन्तु पदपाठ कहा जाता है।

इस लेख में हम वेदों के 'पदपाठ' के बारे में जानेंगे। वेदमंत्रों का सस्वर पाठ 'पदपाठ' कहा जाता है। वेद की संहितापाठ की परम्परा के अनुसार स्वरवर्णों की सन्धि का विच्छेद करके वैदिक मन्त्रों का सस्वर पाठ पदपाठ कहा जाता है। स्वर के सम्बन्ध के अनुसार पद के ग्यारह प्रकार होते हैं। शिक्षा ग्रन्थों में कहा गया है नव पदशय्या एकादश पदभक्तयः।

वेदमन्त्रों का पदपाठ पुण्यप्रदा सरस्वती देवनदी का स्वरूप है। पदपाठ करने से सरस्वती के स्नान का फल प्राप्त होता है पदमुक्ता सरस्वती (याज्ञवल्क्यशिक्षा)।

67. पद पाठ के नियम

संहिता पाठ से पदपाठ बनाने का मौलिक आधार पद सज्ञान तथा पदों का पृथक्करण है। इसके लिए क्रमशः सन्धि विच्छेद, अवगृह करण, इतिकरण एवं अनुनासिकी करण के साथ साथ स्वर परिवर्तन आदि विविध सोपानों की आवश्यकता होती है जिन्हें संक्षेप में निम्नवत् निरूपित किया जा सकता है।

सन्धिविच्छेद

संहिता पाठ की स्वरसन्धियों को पहले अलग अलग कर लेना चाहिए जैसे इन्द्रेहि = इन्द्र। आ। इहि। एमसि = आ। ईमसि।

स्वरसन्धियों के साथ साथ व्यञ्जनसन्धियों को भी अलग कर लेना चाहिए। जैसे विपाट्च्छुतुद्री = विपाट् + शुतुद्री।

जिस विसर्ग को 'ओ' लोप, 'र' या 'स्' या 'ष' हुआ हो उस शब्द को मूल विसर्गयुक्त अवस्था में कर देना चाहिए।

जैसे देवो देवेभिः = देवः। देवेभिः। देवास आसते = देवासः आसके।

संहिता पाठ के सन्धि विकारजन्य 'प्' को 'स्' और 'ण' को न् कर देना चाहिए। जैसे ऊती ष बृहतः = ऊती। सः। बृहतः।

कहीं कहीं संहिता पाठ में कुछ वर्णों का लोप हो जाता है विशेषकर ईम् के 'म' को और द्विचनान्त शब्दों के 'आ' का लोप हो जाता है। पदपाठ में इन्हें लगा लेना चाहिए। जैसे यम ई गर्भम् = यम्। ईम्। गर्भम्। धृतव्रत मित्रावरुण = धृतव्रता। मित्रावरुणा।

अनुस्वारान्त को मान्त करके लिखे, यथा क्रतुं परः = क्रतुम्। परः।

प्रत्येक प्रकार के सन्धिजन्य विकारों से रहित सर्वथा मौलिक पद का ही प्रयोग करें। जैसे प्लुति के कारण जहाँ स्वर दीर्घ हुए हों उन्हें ह्रस्व कर दें। यथा मक्षूमक्षू कृणुहि = मक्षुऽमक्षु कृणुहि। इसी प्रकार विवृति के व्यवधान को दूर करने के लिए लगाये गये अनुस्वार को भी हटा दिया जाता है शशदानाँ एषि = शशदान। एषि।

पदपाठ करते समय कहीं कहीं शब्दों के क्रम को भी बदलना पड़ता है। जैसे शुनश्चिच्छेपम् = शुनःशेपम् चित्।

अवग्रह का प्रयोग

अवग्रह का प्रयोग पदपाठ में अनेक स्थलों पर पद को एक साथ रखकर उन्हें पृथक् प्रदर्शित करने के लिए अवगृह का प्रयोग किया जाता है। अवगृह प्रयोग के कुछ नियम इस प्रकार हैं

शब्दों के साथ लगी कुछ विभक्तियों को अलग करने के लिए मूल शब्द विभक्ति के बीच अवग्रह 'ऽ' चिह्न लगा देते हैं। इसके लिए प्रायः 'भ्' से शुरू होने वाले विभक्ति चिह्न (भ्याम्, भि, भ्यस) को शब्द से अलग कर देते हैं यदि उस शब्द के अन ह्रस्व स्वर हो और मूलशब्द में कोई मौलिक परिवर्तन न हुआ हो। यथा मरुद्भिः = मरुत्ऽभिः, हरिभ्याम् = हरिऽभ्याम्। चतुर्भिः = चतुःऽभि। किन्तु द्वाभ्याम्, अष्टाभिः, देवेभ्यः मं अवग्रह से अलग नहीं करते हैं। 'अस्मभ्यम्' और तुभ्यम् में भी विभक्ति चिह्न अलग नहीं किये जाते हैं।

जब सप्तमी बहुवचन का विभक्ति चिह्न 'सु' को षु नहीं हुआ हो और न उसके पहले दीर्घ स्वर हो तो शब्द से अलग कर देते हैं।

उपसर्ग जब शब्द से मिले हों तो उन्हें अलग कर देते हैं जैसे प्रचेतः = प्रऽचेतः। अभिचक्षे = अभिऽचक्षे। उपस्थे = उपऽस्थे।

शब्दों के बाद लगने वाले प्रत्ययों को अलग कर देते हैं। वृत्रहा = वृत्रऽहा। देवत्वम् = देवऽत्वम्। किसी पद में उपसर्ग और प्रत्यय दोनों होने पर केवल प्रत्यय से पूर्व अवग्रह लगाते हैं।

नकारात्मक अर्थ वाले 'अन्' और 'अ' उपसर्ग अलग नहीं किये जाते हैं जैसे अजरः।

यदि एक शब्द में एक से अधिक उपसर्ग लगे हों तो पहले वाले उपसर्ग को ही अवग्रह द्वारा पृथक् करते हैं। सुप्रवचनम् = सुऽप्रवचनम्। इसके अपवाद भी मिलते हैं। किसी शब्द के साथ जब 'इव' लगा हो तो 'इव' को ही अवग्रह लगाकर अलग करते हैं यदि ऐसे शब्द के पहले उपसर्ग भी लगा हो तो उसे अवग्रह द्वारा अलग नहीं करते हैं जैसे प्रगर्धिनीइव = प्रगर्धिनीऽइव।

समास से बने पदों को अवग्रह द्वारा अलग अलग कर दिया जाता है और समास होने से वर्णों में जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें मौलिक रूप में कर देते हैं जैसे घोरवर्षसः = घोरऽवर्षसः, पुरोहितम् = पुरःऽहितम्।

जिस समास का पहला पद 'द्वा' हो उस 'द्वा' को अलग नहीं करते हैं द्वादश 'वनस्पति' समास को अलग नहीं करते हैं।

पद की द्विरावृत्ति में अवग्रह का प्रयोग होता है जैसे द्यविद्यवि = द्यविऽद्यवि, दिवेदिवे = दिवेऽदिवे।

सामासिक पद में दो से अधिक पद होने पर अन्तिम पद को अवग्रह करना चाहिए।

जिस पद की अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति हो सकती हो उसमें अवग्रह का प्रयोग नहीं करते हैं जैसे रिशादशः।

इतिकरण

इतिकरण प्रगृह्य (ऐसे द्विवचन जिनके अन्त में ई, ऊ व ए हो उन्हें प्रगृह्य कहते हैं।)स्वरों से समाप्त होने वाले शब्दों के आगे पदपाठ में आद्युदात्त 'इति' का प्रयोग किया जाता है। इसे विस्तृत रूप में इस प्रकार समझ सकते हैं।

'ई' जब, द्वितीया का द्विवचनान्त हो या सप्तमी में हो तो प्रगृह्य होता है। इन द्विवचनान्त शब्दों या सप्तमी के रूप के बाद 'इति' लगता है जैसे द्यावापृथिवी = द्यावापृथिवी इति। रोदसी = रोदसी इति।

अमी' के ई को भी प्रगृह्य होता है। अमी = अमी इति।

द्विवचनान्त या सप्तमी में जब शब्द के अन्त में ऊ हो तो उसके साथ भी इति लगता है। इन्द्रवायू इति। धृष्णू इति। चमूइति।

'उ' के स्थान पर पद पाठ में 'ॐ' इति' हो जाता है।

जब द्विवचनान्त शब्द के अन्त में 'ए' आये तो उसे भी प्रगृह्य होता है और पदपाठ में उसके साथ भी 'इति' लगता है। अबुध्यमाने = अबुध्यमाने इति।

जब 'ए' द्विवचनान्त क्रियारूप के अन्त में आवे तो उसके बाद भी 'इति' होता है। जैसे आशाते = आशते इति, नमते = नमेते इति।

अस्मे, युष्मे, त्वे के बाद भी पदपाठ में 'इति' होता है।

जब सम्बोधन के अन्त में 'ओ' आवे तो उस शब्द के बाद इति होता है 'जैसे विष्णो = विष्णो इति।

जब 'ओ' स्वयं स्वतन्त्र शब्द हो तो उसके बाद इति होता है जैसे ओ इति। (x) अथो, उतो, यहो, तत्वो, भो के 'ओ' के बाद भी पदपाठ में 'इति' लगता है।

होतर् और नेष्टर् आदि शब्दों में विसर्ग होने के पहले मूल रूप में र रहा हो तो पदपाठ में उसके बाद इति लगता है, जैसे होतरिति।

इतिकरण के साथ पद का पुनरावर्तन

जिस पद में अवग्रह एवं इति दोनों का प्रयोग करना होता है उनमें पहले पद को यथावत् रखकर इति लगाते हैं तथा बाद में पद का अवग्रह सहित पुनरावर्तन करते हैं। कई अन्य स्थितियों में भी पद का पुनरावर्तन होता है जिन्हें निम्नवत् समझा जा सकता है

समासयुक्त पद के अन्त में जब 'ई' या 'ऊ' आवे अर्थात् सामासिक पद प्रगृह्य सञ्ज्ञक हो तो उस पद के बाद इति का प्रयोग करके पद का पुनरावर्तन करते हैं जैसे द्रवत्पाणी = द्रवत्पाणी इति द्रवत्पाणी, वाजिनीवसू = वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू।

ईकारान्त एवं ऊकारान्त शब्द के बाद 'इव' आवे तो उस शब्द में इव के साथ इति लगता है और दुहराया जाता है जैसे दम्पतीइव = दम्पती इव इति दम्पतीऽइव। संराणे = संराणे इति समुऽराणे इति।

स्युः और अकः' आदि शब्दों के बाद इति लगाकर दुहरा देते हैं जैसे अकः = अकरित्यकः।

स्वर परिवर्तन

स्वर परिवर्तन संहितापाठ से पदपाठ करते समय होने वाली स्वर परिवर्तन प्रक्रिया को समझने हेतु सर्वप्रथम स्वरों की पारस्परिक सन्धि की स्थिति में बनने वाले सनिक स्वरों का ज्ञान आवश्यक है जिसे एक दृष्टि में निम्नवत् देखा जा सकता है।

उदात्त + उदात्त = उदात्त। अनुदात्त + उदात्त = उदात्त। स्वरित + उदात्त = उदात्त। स्वरित + अनुदात्त = स्वरित।

उदात्त + अनुदात्त = उदात्त (दो ह्रस्व इ कारों की सन्धि के अतिरिक्त प्रश्लिष्ट सहित में) उदात्त + अनदात्त = स्वरित (प्रश्लिष्ट सन्धि में केवल इ + इ अर्थात् दो ह्रस्व इकारों की सन्धि होने पर तथा क्षैप्र एवं अभिनिहित सन्धि में सर्वत्र)।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि

अनुदात्त की अनुदात्त या स्वरित के साथ सन्धि होने पर अनुदात्त होता है।

स्वरित और अनुदात्त तथा (कुछ स्थितियों को छोड़कर) उदात्त और अनुदात्त की सन्धि स्वरित होती है।

उदात्त और स्वरित की सन्धि नहीं होती है।

शेष स्थितियों में प्रायः उदात्त होता है ।

स्वर परिवर्तन के सामान्य नियम

संहिता पाठ से पदपाठ करते समय संहिता पाठ गत अनुदात्त स्वर की स्थिति का विशेष ध्यान रखना होता है क्योंकि उदात्त स्वर तो प्रत्येक स्थिति में यथावत रहता है । प्रायः सर्वाधिक परिवर्तन अनुदात्त से स्वरित या प्रचय तथा स्वरित से अनुदात्त के रूप में ही होते हैं । 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (अष्टा.८.४.६६) के अनुसार उदात्त के बाद आने वाला अनुदात्त स्वरित हो जाता है यदि उसके बाद कोई उदात्त या स्वरित न हो । इसी प्रकार स्वरित के बाद के एक या अनेक अनुदात्त (उदात्त से ठीक पहले को छोड़कर) प्रचय हो जाते हैं । अतः स्पष्ट है कि पूर्व पर स्वरों के आधार पर अनुदात्त ही कहीं स्वरित तथा कहीं प्रचय होता है और . स्थिति विशेष से परिवर्तित यह स्वरित या प्रचय उस स्थिति के न मिलने पर पुनः अनुदात्त हो जाता है । इस प्रकार पदपाठ करते समय प्रायः सन्धिज स्वरों की पहचान के साथ अनुदात्त स्वरित या प्रचय के पूर्व परस्थिति जन्य पारस्परिक परिवर्तन को ही एक पहेली की तरह ध्यान में रखना होता है । वैसे तो यह स्वर परिवर्तन का रहस्य उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः पर आश्रित है फिर भी निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्वर परिवर्तन की सामान्य स्थितियों को अलग अलग इस प्रकार रूपायित किया जा सकता है ।

संहिता में पूर्व पद के अन्तिम उदात्त के कारण उत्तर पद के आदि के अनुदान स्वरित हुआ हो तो उसे अनुदात्त कर दें । जैसे तिरः समुद्रम् = तिरः । समुद्रम्, आ गहि= आ गहि ॥ अभि त्वां = अभिं त्वा ।

इसी स्थिति में स्वरित से परे प्रचय अनुदात्त करें, प्रदेव वरुण व्रतम् = प्रदेव । वरुण । व्रतम् । सं भ्रंरन्ति = सम् । भ्रन्ति ।

संहिता पाठ में पूर्व पद के अन्तिम स्वरित के कारण उत्तर पद के आदि या सभी एक श्रुतियों को पदपाठ में अनुदात्त कर दें । जैसे युगानिं वितन्वते = युगानिं । वितन्वते, सुधस्थं विचक्रमाणः = सुधस्थम् । विचक्रमाणः ।

संहिता पाठ में उत्तर पद के आदि उदात्त या जात्यस्वरित होने के कारण. पूर्व पद का अन्तिम अनुदात्त स्वर यदि स्वरित न हुआ हो तो पदपाठ में उसे स्वरित कर दें । जैसे यस्य त्री = यस्यं । त्री, मध्व उत्सः = मध्वः । उत्सः ।

संहिता पाठ में यदि पूर्व पद में स्वरित से उत्तरवर्ती अनुदात्त को उत्तर पद के आद्युदात्त या जात्यस्वरित होने पर प्रचय न हुआ हो तो पदपाठ में उसे प्रचय कर दें । जैसे भुवंनानि विश्वां = भुवंनानि । विश्वां, युध्यमाना अवसे = युध्यमानाः । अवसे ।

जिस पद में अवगृह एवं इति दोनों का प्रयोग करना हो और उसका अन्तिम वर्ण यदि उदात्त हो तो इति के स्वरित से परे किसी अनुदात्त को प्रचय नहीं करते हैं ... जैसे संरराणे = संरराणे इति सम्रराणे । अथवा समाराणे = समाराणे इति सम्ऽआराणे ।

68. पद पाठ के नियम पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक रचित वैदिक स्वर मीमांसा अंश

सभी के लाभार्थ इस विषय का प्रतिपादन किया जाता है । हम यथासम्भव उन सभी नियमों का संग्रह करेंगे, जिनके अनुशीलन से संहिता पाठ को पद पाठ में यथार्थ रूप से परिवर्तन किया जा सके ।

वेदमन्त्र के संहिता पाठ को पदपाठ

वेदमन्त्र के संहिता पाठ को पदपाठ में परिवर्तन करने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है ।

उदात्त आदि स्वरों के साधारण नियम ।

पदपाठ में व्यवहार्य कतिपय विशिष्ट संज्ञाएँ ।

संहितापाठ से पदपाठ करने के साधारण नियम ।

पदस्वर संबन्धी नियम ।

प्रगृह्य-संबन्धी नियम ।

रिफित-संबन्धी नियम ।

अवग्रह-संबन्धी नियम ।

उदात्त आदि स्वरों के साधारण नियम

संहिता अथवा पदपाठ में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और एकश्रुति ।

इस प्रकरण में ऋग्वेद के पदपाठ सम्बन्धी नियमों का ही उल्लेख होगा ।

ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और शौनक अथर्व संहिता में उदात्त स्वर पर कोई चिह्न नहीं होता । वह प्रायः अनुदात्त से परे अथवा स्वरित से पूर्व चिह्न रहित होता है । अनुदात्त के नीचे पड़ी रेखा लगाई जाती है । स्वरित पर खड़ी रेखा लगाई जाती है । स्वरित से परे चिह्न रहित एक श्रुति स्वर वाले होते हैं ।

ये चार स्वर प्रयुक्त होते हैं ।

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और एकश्रुति स्वर अ इ उ आदि अचों (=स्वरों) के धर्म है, व्यञ्जनों के नहीं । इसलिए उदात्त आदि स्वरों के चिह्न शुद्ध अच् (=स्वर) अथवा व्यञ्जन सहित अच् पर ही लगाये जाते हैं, अच् रहित केवल व्यञ्जन पर नहीं । यथा: अग्निमीळे पुराहितम् । ऋग्वेद १।१।१। यहाँ अच् रहित 'म्' स्वररहित है ।

पद में एक ही अक्षर उदात्त होता है । इसका कोई चिह्न नहीं लगाया जाता । (सुप्तिङन्तं पदम् । अष्टाध्यायी १.४.१४)

तवै प्रत्ययान्त समास में, तथा वनस्पति आदि कतिपय समस्त पदों में एक से अधिक भी उदात्त देखे जाते हैं । यथा: अन्वैतुवे । ऋग्वेद १.२४.८ ॥ वनस्पतिः । १.९०.८ ॥

बृहस्पतिः । १.६२.३ ॥ इन्द्रावृहस्पती । ऋग्वेद ४.४९.५ ॥

उदात्त के अतिरिक्त समस्त अच् अनुदात्त हो जाते हैं । अनुदात्तं पदमेकवर्जम् । अष्टाध्यायी ६.१.१५८ ॥ यथा: अनुकामकृत् । ऋग्वेद ९.११.७ ॥ अनुयच्छमानाः । ऋग्वेद

१.१०९.३ ॥

उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित हो जाता है । उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः । अष्टाध्यायी ८.४.६६ ॥ यथा: यु॒ज्ञस्य॑ । ऋग्वेद १.१.१ ॥ अनुयच्छ॑मानाः । ऋग्वेद १.१०९.३ ॥ स्वरित से परे जितने अनुदात्त होते हैं, उन्हें एकश्रुति हो जाता है । स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम् । अष्टाध्यायी १.२.३९ ॥ यथा: अ॒नि॒वि॒श॒मा॒नाः । ऋग्वेद ७.४९.१ ॥ अनुयच्छ॑मानाः । ऋग्वेद १.१०९.३ ॥

यहाँ प्रथम उदाहरण में 'अ' उदात्त है, शेष 'नि,वि,श,मा,ना: पाचों अनुदात्त होते हैं । तत्पश्चात् उदात्त 'अ' उत्तरवर्ती अनुदात्त 'नि' स्वरित होता है । तदनन्तर स्वरित 'नि' से उत्तरवर्ती 'वि श मा ना: चारों अनुदात्तों को एकश्रुति स्वर हो जाता है । इसी प्रकार 'अनुयच्छमाना: में भी समझें ।

कभी कभी पद में उदात्त के स्थान में स्वरित भी मुख्य स्वर बन जाता है । यथा: म॒नुष्यं॑ । ऋग्वेद १.५९.४ ॥ कु॒न्यां॑ । ऋग्वेद १.१६१.५ ॥ यह स्वरित उदात्त की अपेक्षा नहीं करता । अतः इसे जात्य स्वरित कहते हैं ।

कतिपय पदों में केवल अनुदात्त स्वर ही रहता है, उदात्त अथवा जात्य स्वरित नहीं होता । यथा: पद से परे संबोधन पृथिव्या इन्द्रं स॒दनेषु॑ । ऋग्वेद १.५६.६ ॥ आम॒त्रित॒स्य च॑ । अष्टाध्यायी ८.१.१९ ॥ पद से परे तिङन्त इन्द्रमु॒भि प्र गा॑यन्तं । ऋग्वेद १.५.१ ॥ तिङ्गुतिङः । अष्टाध्यायी ८.१.२८ ॥ त्वम् । ऋग्वेद १.११३.५ ॥ संम॒स्मिन् । ऋग्वेद ८.२१.८ ॥ अस्या॒स्मै न॒स्वस॒मसि॒मेत्येता॒न्मनु॒चानि॑ ॥ फिट् सूत्र ४.१० (जर्मन सस्करण) । इस सूत्र में 'सिम' को अनुदात्त कहा है, अगले सिमस्यार्थर्षणेऽन्त उदात्त (४.११) में अथर्ववेद में अन्तोदात्त माना है । परन्तु ऋग्वेद में भी अन्तोदात्त ही देखा जाता है ।

संहिता में उदात्त से परे अनुदात्त हो और उस अनुदात्त से परे उदात्त अथवा जात्य स्वरित हो तो उस उदात्त से परे विद्यमान अनुदात्त को स्वरित नहीं होता, अनुदात्त ही बना रहता है । यथा: दे॒वम् ऋ॒त्विज॑म् = दे॒वम् ऋ॒त्विज॑म् । ऋग्वेद १.१.१ ॥ यहाँ उदात्त 'व' से उत्तर अनुदात्त 'मृ' का स्वरित नहीं हुआ, क्योंकि उससे उत्तर 'त्वि' उदात्त है । संहिता में स्वरित से परे निस अनुदान के आगे उदात्त अथवा जात्य स्वरित होता है, उस स्वरित से परे विद्यमान अनुदात्त को एकश्रुति स्वर नहीं होता, अनुदान ही रहता है । यथा: यु॒ज्ञस्य॑ दे॒वम् = यु॒ज्ञस्य॑ दे॒वम् । ऋग्वेद १.१.१ ॥ हो॒ता॒रम् र॒त्नधा॑त॒मम् = हो॒ता॒रं र॒त्नधा॑त॒मम् । ऋग्वेद १.१.१ ॥

यहाँ प्रथम उदाहरण में 'स्य' स्वरित से परे अनुदात्त 'दे' है, उससे परे 'व' उदात्त है । इसलिए 'दे' को एकश्रुति स्वर नहीं हुआ, अनुदात्त ही रहा । इसी प्रकार द्वितीय पाठ में 'ता' स्वरित है, उससे परे 'र र न' तीन अनुदात्त हैं, अन्तिम अनुदात्त 'न' से परे 'धा' उदात्त है । अतः पहले दो अनुदात्त 'र र' को एकश्रुति हो गई, परन्तु 'न' को एकश्रुति नहीं हुई ।

पद पाठ में व्यवहार्य संज्ञाएँ

पद पाठ में चार संज्ञाएँ अधिक व्यवहार्य है पद, अवग्रह, प्रगृह्य और रिफित ।

पद संज्ञा पद संज्ञा पाँच प्रकार की होती है । यथा:

जिस शब्द के अन्त में नाम की सु औ जस् आदि तथा आख्यात की तिप् तस् झि अथवा त आताम् झ आदि विभक्तियाँ होती हैं, उसे पद कहते हैं । सुप्तिङन्त पदम् । अष्टाध्यायी १.४.१४ ॥

समास में पूर्वपद की विभक्तियों का लोप हो जाने पर भी समस्त शब्दों में पूर्व शब्द की पदसंज्ञा होती है । प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । अष्टाध्यायी १.१.६२ ॥ नाम को भ्याम् भिस् भ्यस् सुप् विभक्तियों के परे रहने पर पूर्व की पद संज्ञा होती है । स्वादिष्वसर्वनामस्थाने । यचि भम् । अष्टाध्यायी १.४.१७, १८ ॥ यकारादि तथा अनादि प्रत्ययों को छोड़कर त्व ता तरप तमप् वत् मतुप् (वतुप्) आदि तद्धित प्रत्ययों के परे रहने पर पूर्व की पद संज्ञा होती है । तसौ मत्वर्थे । अष्टाध्यायी १.४.१९ ॥ (मतुप् अथवा मतुप् अर्थ वाले प्रत्यय के परे रहने पर तकारान्त और सकारान्त शब्द की पद संज्ञा नहीं होती ।)

क्यच् क्यङ् क्यष् प्रत्यय परे रहने पर नकारान्त की पदसंज्ञा होती है । नः क्ये । अष्टाध्यायी १.४.१५ ॥

अवग्रह संज्ञा समास, अथवा भ्याम्, भिस् आदि नाम विभक्तियों, अथवा त्व, ता आदि तद्धित प्रत्ययों अथवा क्यच्, क्यष् आदि प्रत्ययों के परे रहने पर जिस पूर्ववर्ती शब्द की पद संज्ञा होती है, उस शब्द भाग को शेष भाग से पृथक् करके दर्शाना अवग्रह कहाता है । वैयाकरणों के मत में इसे अन्तर्वर्ती पदसंज्ञा का निर्देश कह सकते हैं । ऋक्संप्रातिशाख्य में अवग्रह के लिए 'परिग्रह' संज्ञा का व्यवहार मिलता है ।

प्रगृह्य संज्ञा-निम्न पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है ।

ईकारान्त ऊकारान्त एकारान्त द्विवचनान्त पद । ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् । अष्टाध्यायी १.१.११ ॥ यथा: अ॒ग्नी, वा॒यु, क॒न्ये, प॒चेते, प॒चेथे॑ आदि ।

अमी पद । अ॒दसो॑ मा॒त् । अष्टाध्यायी १.१.१२ ॥

शे प्रत्ययान्त युष्मे, अस्मे, त्वे, मे आदि पद ॥ शे । अष्टाध्यायी १.१.१३ ॥

एकस्वरूप निपात । निपात एकाजनाङ् । अष्टाध्यायी १.१.१४ ॥ यथा अ, इ, उ आदि । उ के विषय में आगे प्रगृह्य पद सम्बन्धी नियमों में विशेष विधान करेंगे ।

ओकारान्त निपात । ओत् । अष्टाध्यायी १.१.१५ ॥ यथा आ॒हो, उ॒ताहो॑, प्रो, यो, आदि ।

सबुद्धि (संबोधन के एक वचन) में ओकारान्त शब्द इति परे । सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावना॒र्षे । अष्टाध्यायी १.१.१६ ॥

ईकारान्त, ऊकारान्त ऐसे शब्द जिनसे परे सप्तमी का लोप हो गया हो अथवा विभक्ति की उत्पत्ति नहीं हुई हो । ईदूतौ च सप्तम्यर्थे । अष्टाध्यायी १.१.१९ ॥ यथा गौरी, मामकी, तनू ।

रिफित संज्ञा रेफान्त तथा सान्त दोनों प्रकार के पदों के रेफ और स् को खर (ख फ छ ठ य च ट त क प श ष स) परे रहने पर अथवा विराम में विसर्ग हो जाते हैं । यथा कर् (लुङ् मध्यमैकवचन अट् का अभाव), कस (किमादेश प्रथमा के एक वचन में) । स्वर (अव्यय) स्वस् (स्व का प्रथमा का एक वचन) । ऐसे स्थानों पर सन्देह होता है कि संहिता में विसर्गान्त पढ़ा हुआ पद रेफान्त है अथवा सान्त ('सु' का) । इस सन्देह को दूर करने के लिए संहिता में जिन विसर्गान्त पदों को इकारादि पदों के परे 'र'

भाव रहता है, उनकी रिफित संज्ञा की है ।' विसर्जनीयो रिफितः । शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्य १६० ॥ (शौनक प्रातिशाख्य में भी विविध शब्दों की रेफी संज्ञा कही है । परन्तु हमने यहां उतने अंश का ही उल्लेख किया है जितने का पद पाठ से प्रयोजन है ।)

69. संहितापाठ से पदपाठ

संहितापाठ से पदपाठ करने के साधारण नियम मन्त्र के संहितापाठ को पदपाठ में परिवर्तित करने के लिए पद, पदस्वर, प्रगृह्य, रिफित और अवग्रहसम्बन्धी नियमों पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

पद सम्बन्धी सामान्य नियम इस प्रकार है ।

प्रत्येक पद के आगे पूर्ण विराम '।' का चिह्न लगाना चाहिए । उच्चारण में पूर्वपद और उत्तरपद (दो पदों) के मध्य ह्रस्व वर्ण के काल के बराबर के (एक मात्र काल) के बराबर रुकना चाहिए । (किन्ही किन्ही के मत में डेढ़ मात्रा काल का समय माना जाता है इसकी विवेचना आगे अवग्रह प्रकरण में की जाएगी) ।

संहितापाठ में विद्यमान सम्पूर्ण सन्धियों को तोड़कर विशुद्ध पदरूप में उपस्थित करना चाहिए । यथा: सूनवेऽग्रैः सूपायनो भंव = सूनवैः । अग्रैः । सूऽउपायनः । भव । ऋग्वेद १.१.१ ॥ (एक पद को मध्य से तोड़ने के नियम मध्य से लिखे जाएंगे ।)

संहिता पाठ में अनुस्वारान्त पद को पदपाठ में 'म्' अन्त से निर्देश करना चाहिए । यथा: होतांरं रत्नधातमम् = होतांरम् । रत्नधातमम् । ऋग्वेद १.१.१ ॥ ('स्पायनः, रत्नधातमम्' इन एक पदों को मध्य में तोड़ने के नियम अवग्रह प्रकरण में लिखेंगे ।

जिस पद में केवल संहिता पाठ में ही दीर्घत्व देखा जाता हो, उसे पदपाठ में ह्रस्व करके दिखलाना चाहिये । यथा: अथांते = अथं । ते । ऋग्वेद १।४।३ ॥ निपातस्य च । अष्टाध्यायी ६.३.१३६ ॥ विद्या हि त्वा = विद्य । हि । त्वा । ऋग्वेद १.१०.१० ॥ द्व्यचोऽतस्तिडः । अष्टाध्यायी ६.३.१३५ ॥ वरुणो मामहन्ताम् = वरुणः । ममहन्ताम् । ऋग्वेद १.९४.१६ ॥ तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य । अष्टाध्यायी १.१.७ ॥ ऋतावृधातस्पृशा=ऋतऽवृधौ । ऋतऽस्पृशा । ऋग्वेद १.२.८ ॥ अष्टाध्यायी सूत्र ६.३.११६ में वृद्धि के उपसंख्यान से अथवा अष्टाध्यायी से ॥ यहां क्रमशः 'अथा विद्या ममहन्ताम् ऋतावृधौ' को 'अथ विद्य मम हन्ताम्-ऋतऽवृधौ' कर दिया जाता है ।

पदस्वर सम्बन्धी नियम संहितापाठ में वर्तमान स्वरों को पदपाठ में इस प्रकार परिवर्तित करना चाहिए ।

संहिता में पूर्वपद के अन्तिम उदात्त के कारण उत्तरपद के आदि के अनुदात्त को “स्वरित” (उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः । अष्टाध्यायी ८.४.६६ ॥) हुआ हो तो उसे पदपाठ में अनुदात्त ही दर्शाना चाहिए और उससे अगले एकश्रुति स्वर को भी अनुदात्त ही दिखाना चाहिए । यथा: अग्निमीळे = अग्निम् । ईळे । ऋग्वेद १.१.१ ॥

संहिता में पूर्वपद के अन्त्य स्वरित के कारण उत्तरपद के आदि में विद्यमान एकश्रुति को अनुदात्त दर्शाना चाहिए । यथा: अग्रैः सूपायनो = अग्रैः । सूऽउपायनः । ऋग्वेद १.१.९ ॥

यदि संहिता पाठ में उत्तरपद के आदि उदात्त (अथवा जात्य स्वरित) परे रहने के कारण पूर्वपद के अन्त्य अनुदात्त को स्वरित न हुआ हो तो उसे पदपाठ में स्वरित दिखाना चाहिए । यथा: नमो भरन्तः=नमः । भरन्तः ॥ ऋग्वेद १.१.७ ॥

यदि संहितापाठ में पूर्वपद में स्वरित से उत्तरवती अनुदात्त को उत्तरपद के आदि उदात्त (अथवा जात्य स्वरित) के कारण एकश्रुति न हुई हो, उसे पदपाठ में एकश्रुतिरूप में दर्शाना चाहिए । यथा: ऋषिभिरिड्यो नूतनैः = ऋषिमिः । ईड्यः । नूतनैः । ऋग्वेद १.१.२ ॥

प्रगृह्य सम्बन्धी नियम प्रगृह्य संज्ञक पदों को पदपाठ में निम्न नियमों के अनुसार दिखाना चाहिए ।

प्रगृह्य संज्ञक पद के आगे आद्युदात्त 'इति' शब्द का निर्देश करना चाहिए और उसकी पूर्व के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिए । परन्तु स्वर के विषय में संहिता के समान कार्य करने चाहिए । यथा: अग्नी इति । ऋग्वेद ५.४५.४ ॥ अजुरयू इति । ऋग्वेद १.११६.२० ॥ आसाते इति । ऋग्वेद २।४१.५ ॥ आसांथे इति । ऋग्वेद ५।६२।५ ॥ वायो इति । ऋग्वेद १.२.१ ।

संहिता में पढ़े गए 'उ' निपात से आगे 'इति' शब्द का प्रयोग करके 'उ' को 'ॐ' रूप में दर्शाना चाहिए ॥ उजः । अष्टाध्यायी १.१.१७ ॥ ॐ । अष्टाध्यायी १.१.१८ ॥ अन्वेतुवा उं = अनुं एतुवे । ॐ इति ॥ ऋग्वेद १।२४।८ ॥ इमा उ = इमाः । ॐ इति । ऋग्वेद १.१२६.५ ॥

जिस पद में प्रगृह्य संज्ञा और अवग्रह (अवग्रह के नियमों के अनुसार) दोनों कार्य दर्शाने हों, वहाँ पहले प्रगृह्य संज्ञा के पद का निर्देश करके उसके आगे इति का प्रयोग करना चाहिए, तत्पश्चात् उसी पद की पुनः आवृत्ति करके अवग्रह दर्शाना चाहिए । यथा: चित्रभानो इति चित्रभानो । ऋग्वेद १.३.४ ॥ आयुजी इत्यांऽयुजी । ऋग्वेद १.२८.७ ॥

प्रगृह्य पद, इति तथा अवगृहीत तीनों पदों के अनुदात्त आदि स्वरों में संहितावत् यथायोग्य परिवर्तन करने चाहिए । यथा: चित्रभानो इति चित्रंऽमानो । ऋग्वेद ५.२६.२ ॥

रिफित सम्बन्धी नियम

संहितापाठ में रेफान्त पद को जहाँ विसर्ग हो जाता है, वहाँ सन्देह होता है कि वह विसर्गान्त रूप उसी में मिलते जुलते सकारान्त पद का है अथवा रेफान्त का । इस सन्देह को मिटाने के लिए पदकार आचार्य जिस विसर्गान्त पद को रेफान्त पद का रूप समझते हैं, उसको पदपीठ में इति शब्द लगाकर निर्देश करते हैं । यथा: पृक्मन्तः पयः = पृक्म् । अन्तरिति । पयः ॥ ऋग्वेद १.६२.९ ॥ दिवो दुहितः प्रल्वन् = दिवः । दुहितरिति । प्रल्वज्वात् । ऋग्वेद ६.६५.६ ॥ यहाँ प्रथम उदाहरण में अन्तर शब्द का और अकारान्त 'अन्त' के प्रथमा के एकवचन में एक जैसा रूप बन सकता है । अतः यहाँ अकारान्त का 'अन्तः' रूप नहीं है, यह दर्शाना अभीष्ट है । द्वितीय उदाहरण में दुहितृ शब्द, का संबोधन में 'दुहितर' होकर 'दुहितः' रूप बना है । दुह धातु से छान्दस नियम से इट् आगम होकर 'क्त' प्रत्यय का रूप भी 'दुहित.' सम्भव है । अतः मन्त्र में दुहितृ का रूप है, दुहित का नहीं, यह दर्शाया है ।

रेफान्त 'स्वर' शब्द के 'स्व.' पद का अकारान्त 'स्व' शब्द के प्रथमा विभक्ति के एकवचन के 'स्वः' रूप से भेद दर्शाने के लिए पूर्व नियम के अनुसार इति शब्द का प्रयोग करते हैं । परन्तु यहाँ इति शब्द के अनन्तर 'स्वः' पद को पुनः पढते हैं । यथा: स्वः परिभूः = स्वः । रिति स्वः । परिभूः । ऋग्वेद १.५२.१२ ॥

यहाँ उदात्त इति के परे '१' संख्या का निर्देश अध्याय दस के सूत्र १४ के अनुसार होता है। संहिता के सामान्य नियम के अनुसार जात्य स्वरित 'स्वः' के परे अनुदात्त 'ति' को स्वरित नहीं हो सकता। परन्तु यहाँ पद सम्बन्धी यह विशेष नियम समझना चाहिए कि स्वरित परे रहने पर भी अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। इसी नियम को बतलाने के लिये ही यहाँ 'इति' से आगे पुनः 'स्वः' की आवृत्ति की है।

आख्यात संज्ञक रेफान्तं पदं के नामसंज्ञक सान्त पद (विभक्ति के सकार के कारण) के साथ होने वाले सन्देह की निवृत्ति के लिए पूर्व नियम १ से इति पद का प्रयोग करते हैं और उसके आख्यातत्व धर्म को बताने के लिए उसकी पुनरावृत्ति करते हैं। यथा: एतंशे कः = एतंशे। करिति कः ॥ ऋग्वेद ५।२९।५॥ पातवे वाः = पातवे। वारिति वाः ॥ ऋग्वेद १.११६.२२॥ यहाँ प्रथम उदाहरण में 'कः' 'कृ' धातु के लुट् के मध्यम पुरुष के एकवचन का रूप है, 'अट' का आगम नहीं होता। इसका 'किम्' के 'कः' रूप से सादृश्य है। दूसरे उदाहरण में 'वाः' 'वार' रेफान्त का रूप है।

कहीं कहीं विसर्गान्त सान्त शब्दों के आख्यात और नाम का भेद दर्शाने के लिए भी आख्यातपद से 'इति' शब्द का निर्देश करके आख्यातपद को पुनरावृत्ति दर्शाते हैं। यथा: देवं भाः देवम्। भारिति भाः। ऋग्वेद १.१२८.२॥

यहां 'भाः' 'भा दीप्तौ' के मध्यम पुरुष के एकवचन 'मास्' का रूप है। ऐसा ही 'भाः' पद सान्त 'भास' शब्द का भी बनता है।

एक स्थान पर 'अस्' धातु के आख्यात रूप 'स्तः' का 'स्तृ' के स्तर् = 'स्तः' रूप से भेंट दर्शाने के लिए भी इति का प्रयोग और पुनरावृत्ति दर्शाई है। यथा: स्तु इति स्तः। ऋग्वेद ८।३।२॥

अवग्रह सम्बन्धी नियम

पदच्छेद करते समय जिन पदों में 'भ्याम् भिस' अथवा 'त्व ता तरप् तमप्' आदि प्रत्ययों के परे रहने पर पूर्व भाग की अवग्रह (पद) संज्ञा हो उसे तथा समास के पूर्वपद को उत्तर भाग से पृथक् करके दर्शाना चाहिए।

अवग्रहसंज्ञक भाग को पृथक् दर्शाने के लिए उसके आगे ऽ चिह्न का प्रयोग करना चाहिए। दोनों भागों के उच्चारण में अर्धमात्रा काल का व्यवधान करना चाहिए। (कात्यायन प्रातिशाख्य में 'अवग्रहो ह्रस्वसमकाल' (५.१) ह्रस्व समकाल एकमात्राकाल माना है। कैयट ने महाभाष्य १.१.७ की व्याख्या में 'अर्धमात्रा काल' लिखा है। नागेश ने दोनों मतों के विरोध का समाधान करते हुए लिखा है दो अव्यवहित वर्णों के उच्चारण में जिस अत्यल्प काल का अन्तर अवश्यमावी होता है। दो वर्णों के उच्चारण के लिए दो प्रयत्न करने होते हैं, दोनों प्रयत्नों के मध्य में यदि सूक्ष्म काल का व्यवधान न माना जाए तो प्रयत्नों का द्वित्व नहीं बनता। एक प्रयत्न से दो वर्ण बोले नहीं जाते। इसलिए इस अवश्यभावी काल व्यवधान का परिमाण अर्धमात्रा काल माना जाता है। जो इस अवश्यभावी काल की उपेक्षा करते हैं, वे अवग्रह में 'अर्धमात्रा काल का व्यवधान कहते हैं और जो इस भव्यभावी काल को अवग्रह के अर्धमात्रा काल में जोड़ देते हैं, वे एकमात्राकाल का व्यवधान मानते हैं। इस प्रकार दोनों मतों में कोई भेद नहीं ॥) यथा: अप्सु। ऋग्वेद १.२३.१६॥ कण्वंस्तमः। ऋग्वेद १.४८.४॥ कण्वंस्सखा। ऋग्वेद १०.११५.५॥ आऽवर्जते। ऋग्वेद १.३३.१॥

अवग्रहसंज्ञक भाग में उत्तरभाग के कारण यदि कोई सन्धि हुई हो तो उस सन्धि को दूर करके शुद्ध रूप में दर्शाना चाहिए। यथा: अद्भिः अप्सुभिः। यजुः ६.१८॥ अब्जाः अप्सजाः। ऋग्वेद ४.४०.५॥ पुरोर्हितम् पुरःर्हितम्। ऋग्वेद १.१.१॥ अन्वेतवै = अनुऽपुतवै। ऋग्वेद १.२४.८॥

अवग्रहसंज्ञक भाग में यदि ऐसा दीर्घत्व हो जो लोक में दिखलाई न पड़ता हो, तो अवग्रह दर्शाते समय उसे ह्रस्व कर दिया जाता है। यथा: पुरुतमम् पुरुऽतमम्। ऋग्वेद १.५.२॥ ऋतेन ऋतावृधौ=ऋतऽवृधौ। १.२.८॥

नकारान्त शब्द से मतुप् (वतुप्), तरप्, तमप् इन प्रत्ययों के परे रहने पर 'न' के आगे अवग्रह का चिह्न लगाना चाहिए। यथा: अक्षुण्वन्तः = अक्षुण्वन्तः। ऋग्वेद १०.७१.७॥ अस्थन्वन्तम् = अस्थन्ऽवन्तम्। ऋग्वेद १.१६४.४॥ मुदिन्तरः = मुदिन्ऽतरः। ऋग्वेद ८।२४।१६॥ दुस्युहन्तम् = दुस्युहन्ऽतम्। ऋग्वेद ६.१६.१५॥

विशेष पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इन प्रयोगों में नान्त शब्द के न का लोप होता है। तदनन्तर अष्टाध्यायी ८।२।१६,१७ से प्रत्यय को नुट् का आगम होता है। इसलिए, पाणिनीय मतानुसार अवग्रह 'अक्षुण्वन्त दुस्युहन्तम्' ऐसा पाता है। पदकार शाकल्य ने अपने व्याकरणानुसार पदपाठ की रचना की है। सम्भव है उनके व्याकरण में 'मनुप् तरप् तमप्' प्रत्ययों के परे रहने पर नान्त पद के न का लोप न माना हो।

समासयुक्त कृदन्त हलन्त अथवा ह्रस्वान्त शब्द से परे 'तरप् तमप्' प्रत्यय हुए हो तो वहाँ कृदन्त भाग के आगे अवग्रह का चिह्न किया जाता है। यथा: दुस्युहन्तम् = दुस्युहन्ऽतम्। ऋग्वेद ६।१६।१५॥ देव्यंचस्तमः = देवव्यंचऽतमः। ऋग्वेद ५।२२।२॥ देववांतमः = देववांतऽतमः। ऋग्वेद ६।२६।४॥ चित्रश्रवस्तमः = चित्रश्रवऽतमः। ऋग्वेद ३।५६॥६॥

समासयुक्त कृदन्त भाग यदि दीर्घान्त हो और उससे परे 'तरप् तमप्' प्रत्यय हुए हों तो वहाँ समासयुक्त कृदन्त भाग में पूर्वपद के उत्तर अवग्रह का चिह्न किया जाएगा। यथा: रत्नधातमम् = रत्नधातंमम्। ऋग्वेद १.१.१॥ अश्वसातमः = अश्वऽसातमः। ऋग्वेद १.१७५.५॥ देववीतमः = देवुऽवीतमः। ऋग्वेद १.३६.९॥

जहाँ कृदन्त का दो उपसर्गों के साथ समास होता है, वहाँ प्रथम उपसर्ग के आगे अवग्रह का चिह्न किया जाता है। यथा: दुर्नियन्तुः = दुःऽनियन्तुः। ऋग्वेद १.१९०.६॥ जहाँ पदपाठ में अवग्रह और प्रगृह्य दोनों संज्ञाएँ दिखानी होती है, वहाँ पहले अवग्रहरहित पद का निर्देश करके 'इति' का निर्देश किया जाता है और उसके अनन्तर उसी पद की आवृत्ति करके अवग्रह दर्शाया जाता है। यथा: देवशिष्टे इति देवशिष्टे। ऋग्वेद १.११३.३॥ संबन्धू इति संबन्धू। ऋग्वेद ३.१.१०॥ संरराणे इति सम्ऽरराणे। ऋग्वेद ६.७०.६॥

संहितापाठ में जहाँ एक पद की द्विरावृत्ति (द्विर्वचन) होता है, वहाँ पदपाठ में द्विरावृत्ति (दोनों) को एक पद समान मानकर पूर्व के अनन्तर अवग्रह दर्शाया जाता है। यथा: दिवेदिवे = दिवेऽदिवे। ऋग्वेद १.१.३॥ प्रप्रं = प्रऽप्र। ऋग्वेद १.४०.७॥ संसं = सम्ऽसं। ऋग्वेद १०.१९१.१॥

संहिता में जहाँ आख्यात (तिङन्त) उदात्त हो और अव्यवहितपूर्व उपसर्ग अनुदात्त हो, वहाँ उपसर्ग और आख्यात को समस्त पद मानकर उपसर्ग के आगे अवग्रह दर्शाया जाता है। यथा: प्रवीचंति = पुऽवोचंति। ऋग्वेद ५.२७.४॥ अभिशासंति = अभिऽशासंति। ऋग्वेद ६.५४.२॥ निवेशयन् = निऽवेशयन्। ऋग्वेद १.३५.२॥

संहिता में जहां आख्यात अनुदात्त हो, परन्तु उससे अव्यवहित दो उपसर्ग प्रयुक्त हों और उन दोनों में पहला उपसर्ग अनुदात्त हो और दूसरा उदात्त हो तो वहां तीनों पदों को समस्त मानकर प्रथम उपसर्ग से अवग्रह दर्शाया जाता है । यथा: अनुवालैभिरे = अनुऽआलेमिरे । ऋग्वेद १०.१३०.७ ॥ प्रत्यावर्तय = प्रतिआवर्तय । ऋग्वेद ६.४७.३१ ॥ विप्रयन्तः = विऽप्रयन्तः । ऋग्वेद ९.२२.५ ॥

नञ्समास और द्वन्द्वसमास में अवग्रह नहीं दर्शाया जाता । यथा: अजरः । ऋग्वेद १.५८.२ ॥ अदंब्धाः । ऋग्वेद १.१७३.१ ॥ अनुपत्यानि । ऋग्वेद ३.५४.१८ ॥ अनुवद्यः । ऋग्वेद ९.६९.१० ॥ द्यावाक्षामां । ऋग्वेद १.९६.५ ॥ इन्द्रवायू । ऋग्वेद १.२.४ ॥

जिस पद की अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति हो सकती है, उसमें अवग्रह नहीं दर्शाया जाता । यथा: आशुशुक्षणिः । ऋग्वेद २.१.१ ॥ यहाँ 'आ शुशुक्षणि' है, अथवा 'आशु शुक्षणि' है, अथवा 'आशु शुक्षणि' है, यह सन्दिग्ध है । (आशु इति च शु इति च क्षिप्रनाम्नी भवतः, क्षणिरुत्तरः..... आ इत्याकार उपसर्गः पुरस्तात्, चिकीर्षितजः उत्तरः । निरुक्त ६.११ ॥)

कात्यायन ने कहा है पाङ्गान् उद्रोऽब्धाय संशयात् [नावगृह्यन्ते] (प्रातिशाख्य ५.३४) । अर्थात्-पाङ्गान् उद्रः अब्धाय इन पदों में व्युत्पत्ति के संशय के कारण अवग्रह नहीं दर्शाया जाता । (इनकी विविध व्युत्पत्तियों के लिए देखो इस सूत्र का उव्वट भाष्य । तुलना करो कैयट (महाभाष्य प्रदीप ३.१.१०९) तदुक्तम् इरिदुर्नावगृह्यते हरिद्वरित्यत्र किं हरिशब्द इकारान्त, अथ हरिच्छवदस्तकारान्त इति सन्देहात् ॥

जहां 'भ्याम् भिस भ्यस नाम् सु' विभक्तियों के परे शब्द के अन्तिम अ इ उ ऋ को दीर्घ या अन्य विकार हो जाता है, वहां अवग्रह नहीं दर्शाया जाता । यथा: हस्त = हस्ताभ्याम् । ऋग्वेद १०.१३७.७ ॥ आदित्य = आदित्येभिः । ऋग्वेद १.२०.५ ॥ आदित्येषु । ऋग्वेद ८.२७.३ ॥ मति=मतीनाम् । ऋग्वेद १.४६.५ ॥ मधु = मधूनाम् । ऋग्वेद १.११७.६ ॥ पितृ = पितृणाम् । ऋग्वेद १.१०९.३ ॥

अवग्रह में स्वर संचार एकपदवत् मानकर किया जाता है । यथा: सबन्धू इति सऽबन्धू । ऋग्वेद ३.१.१० ॥ दुस्युहन्ऽतमः । ऋग्वेद ६.१६.१५ ॥ चित्रश्रवःऽतमः । ऋग्वेद ३.५९.६ ॥

यहां प्रथम और द्वितीय उदाहरणों में अवगृहीत उदात्त 'स' से परे 'बन्धू' के अनुदात्त को स्वरित तथा एकश्रुति हो गई । तृतीय में अवगृहीत पद के 'श्र' के स्वरितत्व को मानकर उत्तरभाग के अनुदात्तों को एकश्रुति हो गई ।

जिस पद में अवग्रह दर्शाना हो, उसके उत्तरभाग का अन्तिम अक्षर उदात्त हो तो 'इति' शब्द के स्वरित 'ति' से परे किसी अनुदात्त को एकश्रुति नहीं होती । यथा: सुरराणे इति सुम्ऽरराणे । ऋग्वेद ७.७०.६ ॥

इति के साथ स्वरसन्धि हो जाने पर भी एकश्रुति नहीं होती । यथा: आमिमाने इत्याऽमिमाने । ऋग्वेद १.११३.२ ॥

अवगृह्यमाण पद में यदि पूर्वभाग अन्तोदात्त हो तो 'इति' शब्द के स्वरित 'ति' से परे पूर्वभाग के अनुदात्तों को एकश्रुति नहीं होती, परन्तु पूर्वभाग के अन्तिम उदात्त से परे उत्तरभाग में स्वरितत्व और एकश्रुति हो जाती है । यथा: सुमानबन्धू इति सुमानवन्धू । ऋग्वेद १.११३.२ ॥

उपसंहार

मन्त्र के संहितापाठ को पदपाठ में परिवर्तित करने के जो नियम ऊपर लिखे हैं, वे ऋग्वेद के पदपाठ के अनुसार हैं । शुक्ल यजु के माध्यन्दिन और काण्व शाखा, कृष्ण यजुर्वेद, के तैत्तिरीय, मैत्रायणी आदि, सामवेद और अथर्ववेद के पदपाठों के नियमों में कुछ कुछ अपनी अपनी विशेषताएं हैं । उन सबका वर्णन यहां विस्तारमय में नहीं किया ।

यह प्रकरण केवल एम. ए. और शास्त्री के विद्यार्थियों के लिए ही लिखा गया है । उनके पाठ्यक्रम में प्रायः ऋग्वेद के ही अंश रहते हैं, इसलिए केवल ऋग्वेद के पदपाठ के नियम दिए हैं ।

कहा कहा अवग्रह नहीं होता, यह पूर्णतया उस उस शाखा के प्रातिशाख्यों से ही जाना जा सकता है । उन्हें किन्हीं विशेष नियमों में बांधना असम्भव है । प्रातिशाख्यकारों ने भी प्रायः पद गिना दिए हैं । इसलिए इस एक अंश को छोड़कर अन्य नियम प्रायः सब लिख दिए हैं । इनका ध्यान रखने से पिच्यानवे प्रतिशत पटपाट शुद्ध रूप में निरूपित किया जा सकता है ।

70. वैदिक वर्ण और स्वर

वैदिक वर्ण और स्वर

वर्ण वैदिक व्याकरण में १३ स्वर तथा ३९ व्यञ्जन वर्णों को मिलाकर कुल ५२ ध्वनियाँ हैं जिन्हें निम्न सारणी में समनित रूप से देखा जा सकता है ।

स्वर
(क) समानाक्षर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ॡ = ०९
(ख) सन्ध्यक्षर ए, ओ, ऐ, औ

व्यञ्जन

(क) स्पर्श क से म तक (ख) अन्तस्थ य, र, ल, व । (ग) सोष्म श, ष, स, ह (ध) अनुस्वार विसर्ग (ङ) जिह्वामूलीय उपध्मानीय

योग = ५०

ळ तथा ॠ = ०२

ळ तथा ॠ लौकिक संस्कृत के व्यञ्जनों के अतिरिक्त वैदिक संस्कृत में ये दो. व्यवञ्जन अधिक होते हैं । दो स्वरों के बीच में आने पर डकार को ळकार हो जाता है (द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य, सम्पद्यते स डकारो ळकारः) । यदि वही 'ङ' 'ह' के साथ आवे तो 'ॠह' हो जाता है (ॠहकारतामेति स एव चास्य डकार सन्नूष्मणा संप्रयुक्तः) ।

स्वर

(Accent) स्वर वैदिक भाषा की प्रमुख विशेषता है। वेद के अध्ययन में स्वर शास्त्र की अप्रतिम महत्ता है। 'स्वर' शब्द स्वर धातु से घ प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। निघण्टु में स्वर पद 'गत्यर्थक आख्यातों में पठित है। अतः स्वर शब्द का निर्वचन होगा। यह मुख्यता पांच होते हैं। **उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय, निघात।** स्वर्यन्तेऽर्था एभिः अर्थात् इससे पदों के अर्थ जाने जाते हैं।'

अन्धकारे दीपिकाभिर्गच्छन्न स्खलति क्वचित्। एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्याः स्फुटा इति ॥ .

ये स्वर (accent) अच् अर्थात् स्वर (Vowel) के ही धर्म हैं। ये मुख्य रूप से उदात्त अनुदात्त एवं स्वरित। उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च त्रयः स्वराः आयामविश्रम्भाक्षेपैस्त उच्यन्ते।

उदात्त

'उदात्त' शब्द 'उत्' तथा 'आ' पूर्वक 'दा' धातु में 'क्त' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार 'उदात्त' का शाब्दिक अर्थ है ऊपर उठाकर ग्रहण किया हुआ। उच्चैरादीयते इति उदात्तः अर्थात् उच्च स्वर से जिसका ग्रहण अर्थात् उच्चारण होता है वह उदात्त है। वायु के कारण उच्चारणावयवों के ऊपर जाने को 'आयाम' कहते हैं। उस आयाम से जो उच्चारित होता है वह उदात्त है। आयामो नामूर्ध्वगमनं गात्राणां वायुनिमित्तम्। जिन स्वरों के उच्चारण में गात्रों का आरोह हो अर्थात् उच्चारणावयव ऊपर की ओर खिंच जाते हैं उन्हें उदात्त कहते हैं। लघु सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार उच्चैरुदात्तः अर्थात् ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽनुदात्त सञ्ज्ञः स्यात्। कण्ठ तालु आदि सखण्ड स्थानों के ऊपर के भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको उदात्त कहते हैं। वैदिक ग्रन्थों में इनकी पहचान के लिए चिह्न लगे होते हैं जोकि सभी। ग्रन्थों में समान नहीं है। ऋग्वेद में उदात्त पर कोई भी चिह्न नहीं लगाया जाता। .

अनुदात्त

'अनुदात्त' शब्द अन् उत् तथा आ पूर्वक दा धातु में क्त प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है, जिसका व्युत्पत्ति लभ्य शाब्दिक अर्थ है ऊपर उठाकर न ग्रहण किया हुआ नीचैरादीयते इत्यनुदात्तः अर्थात् उच्चारण अवयवों के नीचे जाने से जिस स्वर का ग्रहण अर्थात् उच्चारण होता है वह अनुदात्त कहलाता है। ऋग्वेद में 'अनुदात्त के नीचे एक पड़ी रेखा () लगायी जाती है। ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार अनुदात्त का उच्चारण 'विश्रम्भ' से होता है विश्रम्भो नामाधोगमनं गात्राणां वायुनिमित्तम्। अर्थात् वायु के कारण उच्चारणावयवों के नीचे जाने को विश्रम्भ कहते हैं उस विश्रम्भ से जो उच्चारित होता है वह अनुदात्त है। पाणिनि के अनुसार नीचैरनुदात्तः अर्थात् ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेष्वधो भागे निष्पन्नोऽच् अनुदात्त सञ्ज्ञः स्यात्” अर्थात् कण्ठ तालु आदि सखण्ड स्थानों के नीचे भाग से जिस अच् का उच्चारण होता है वह अनुदात्त होता है। अतः अनुदात्त स्वर के उच्चारण में गानों का अवरोह होता है। अनुदात्त स्वर संहिता में उदात्त से प्रभावित होता रहता है। नियमतः उदात्त से परे रहने वाला अनुदात्त वर्ण स्वरित हो जाता है यदि उसके परे कोई उदात्त या स्वरित न हो। इस अनुदात्त के स्वरित हो जाने पर परवर्ती उदात्त के पूर्व के समस्त अनुदात्त वर्ण प्रचय हो जाते हैं।

स्वरित

"स्वरित" शब्द ध्वनि अर्थक स्वर धातु से निष्पन्न हुआ है। स्वरित का शाब्दिक अर्थ है ध्वनित या उच्चारित। "स्वरः सञ्ज्ञातः यस्मिन् सः स्वरितः अर्थात् स्वर उत्पन्न किया जाता है जिसमें वह स्वरित होता है। ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार एकाक्षरसमावेशे पूर्वयोः स्वरितः स्वरः" अर्थात् “पूर्व वाले दो (उदात्त और अनुदात्त) का एक अक्षर में समाहार अर्थात् समावेश होने पर स्वरित स्वर निष्पन्न होता है। स्वरित में उदात्त और अनुदात्त दोनों स्वरों के गुणों का मेल होता है। ऋग्वेद में 'स्वरित' के सिर पर एक खड़ी रेखा लगायी जाती है; जैसे (।) ऋग्वेदप्रातिशाख्य के अनुसार स्वरित का उच्चारण आक्षेप से होता है। "आक्षेपो नाम तिर्यगमनं गात्राणां वायु निमित्तम्" अर्थात् वायु के कारण उच्चारण अवयवों के तिरछा जाने को आक्षेप कहते हैं उस आक्षेप से जो उच्चारित होता है वह स्वरित है। स्वरित का उच्चारण ध्वनि के आरोह तथा अवरोह से होता है। स्वरित के उदात्तांश के उच्चारण में ध्वनि का आरोह एवं अनुदात्त अंश के उच्चारण में अवरोह होता है। स्वरित की आधी मात्रा अथवा सम्पूर्ण स्वरित का आधा भाग उदात्त से उच्चतर उच्चारित होता है। स्वरित का परवर्ती अवशिष्ट अनुदात्त अंश उदात्त के समान सुना जाता है। यदि उस स्वरित के बाद में विद्यमान अक्षर उदात्त अथवा स्वरित उच्चारित न हो यतोहि तस्योदात्ततरोदात्तादर्थमात्रार्थमेव वा। अनुदात्तः परः शेषः स उदात्तश्रुति न चेत् ॥ उदात्तं वोच्यते किञ्चित् स्वरितं वा अक्षरं परम् ॥ पाणिनीय व्याकरण में इसे उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः कहकर परिभाषित किया गया है। स्वरित में उदात्त एवं अनुदात्त का मिश्रण तिल तण्डुल अथवा काष्ठ जन्तु के समिश्रण के सदृश होता है अर्थात् स्वरित में उदात्त तथा अनुदात्त धर्मों का समिश्रण सभी अवयव समान रूप से नहीं होता। स्वरित के आदि भाग में उदात्त धर्म रहता है और बाद वाले आधे भाग में अनुदात्त धर्म रहता है। इसीलिए व्याकरण के अनुसार समाहारः स्वरितः अर्थात् उदात्तानुदात्तत्वे वर्ण धर्म समाह्रियते यत्र सोऽच् स्वरित् सञ्ज्ञः स्यात्। उदात्तत्व एवं अनुदात्तत्व दोनों वर्गों का मेल जिस वर्ण में हो वह स्वरित होता है। अर्थात् तालु आदि स्थानों के मध्य भाग में जिस 'अच् का उच्चारण होता है उसे स्वरित कहते हैं। स्वरित के कई भेद होते हैं जिन्हें निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

स्वरित के तीन भेद हैं।

उदात्तपूर्व, जात्य, सन्धिज।

उदात्तपूर्व के तीन भेद पाए जाते हैं। वैवृत, तैरोव्यञ्जन, तैरोऽवग्रह।

जात्य के दो भेद पाए जाते हैं। अपूर्व, नीचपूर्व।

सन्धिज के तीन भेद पाये जाते हैं। प्रश्लिष्ट, क्षेप्र, अभिनिहित।

१. उदात्तपूर्व स्वरित, उदात्त से परे रहने वाला अनुदात्त जब स्वरित हो जाता है तब उस स्वरित को उदात्त पूर्व, सामान्य, परतन्त्र स्वरित आदि नामों से अभिहित किया जाता है।

उदात्तपूर्व स्वस्तिमनुदात्तं पदेऽक्षरम् अर्थात् वह स्वरित स्वभाव से अनुदात्त ही होता है, पूर्ववर्ती उदात्त के प्रभाव से यह स्वरित हो जाता है। परिस्थितिबश पूर्ववर्ती उदात्त के हट जाने पर यह स्वरित अपने मूल रूप 'अनुदात्त' में ही परिवर्तित हो जाता है। इसके तीन। उपभाग है

(क) वैवृत स्वरित संहिता में दो स्वर वर्गों के उच्चारण के मध्य में विद्यमान काल के व्यवधान को विवृत्ति कहते हैं स्वान्तरं तु विवृत्तिः।

ऐसे स्थानों में पदान्त उदात्त स्वर के परे जहाँ पदादि अनुदात्त स्वरित हो जाता है उसे वैवृत स्वरित कहते हैं यथा यः। इन्द्र। सोमोऽपातमः = य इन्द्र सोम पातमः ॥

(ख) तैरोव्यञ्जन स्वरित जहाँ व्यञ्जन का व्यवधान होने पर भी पूर्ववर्ती उदात्त के कारण परवर्ती अनुदात्त स्वरित हो जाता है तो उसे तैरोव्यञ्जन स्वरित कहते हैं। इसे व्यञ्जनव्यवहित स्वरित भी कहते हैं

तिरोऽन्तर्धानं व्यञ्जनं यस्येति तैरोव्यञ्जनम्। जैसे अग्रिम् ईडे = अग्रिमीळे।

(ग) तैरोऽवग्रह स्वरित जब पूर्ववर्ती उदात्त और परवर्ती अनुदात्त के मध्य में अवग्रह थे व्यवधान होने पर भी अनुदात्त स्वरित हो जाता है तब उसे तैरोऽवग्रह स्वरित कहा जाता है। यथा उषऽउष, गुणऽपतिम्।

२. जात्यस्वरित जात्यस्वरित का शाब्दिक अर्थ है स्वभाव से ही स्वरित अर्थात् उदात्त और अनुदात्त की संगति के बिना जो स्वरित उत्पन्न होता है उसे जात्य स्वरित कहते हैं। इसे स्वतन्त्र स्वरित भी कहते हैं।

अतोऽन्यत्स्वरितं स्वारं जात्यमाचक्षते पदे। अर्थात् एक पद में उदात्तपूर्व स्वरित ..अन्य जो स्वरित स्वर है उसे जात्यस्वरित कहते हैं अर्थात् पद में जिस स्वरित के पूर्व उदात्त नहीं होता है उसे जात्य स्वरित कहते हैं।

जात्य स्वरित सभी परिस्थितियों में स्वरित रहता है अर्थात् यह कभी भी अनुदान के रूप में दिखलायी नहीं पड़ता इसीलिए इसे नित्य स्वरित भी कहते हैं।

जात्य स्वरित प्रायः यु अथवा वु में अन्त होने वाले संयुक्त वर्ण के बाद वाले स्व. वर्ण पर आता है। दूसरे शब्दों में प्रायः एक ही पद में क्षेप्र सन्धि से जायमान स्वरित जात्य स्वरित होता है। यह दो प्रकार का होता है

(क) अपूर्व जात्यस्वरित जिस जात्य स्वरित के पूर्व में कोई भी स्वर नहीं होता है। उसे अपूर्व जात्य स्वरित कहते हैं यथा स्वः, कः न्यक् आदि।

(ख) नीच पूर्व जात्यस्वरित जिस जात्यस्वरित के पूर्व में अनुदात्त स्वर होता है, वह नीच पूर्व जात्य स्वरित है। यथा कन्या, हृदय्या आदि।

३. सन्धिज स्वरित, जहाँ दो अक्षरों की सन्धि के साथ साथ अक्षरों के धर्म भूत स्वरों की भी सन्धि होती है और वह सन्ध्य स्वर स्वरित होता है तो उस स्वरित को सन्धिज के नाम से अभिहित किया जाता है। ये तीन हैं

(क) प्रश्लिष्ट स्वरित, पाणिनीय व्याकरण की दीर्घ गुण और वृद्धि संधियों को ऋक प्रातिशाख्य में प्रश्लिष्ट संधि कहा गया है। इसी प्रश्लिष्ट संधि के कारण होने वाला स्वरित 'प्रश्लिष्ट' स्वर कहा जाता है

उदात्तवत्येकीभावं उदात्तं सन्ध्यक्षरम्। अर्थात् प्रश्लिष्ट संधि में एक ओर का स्वर वर्ण उदात्त होने पर सन्ध्य स्वर वर्ण भी उदात्त होता है। किन्तु

इकारयोश्च प्रश्लेषे झैप्राभिनिहितेषु च। उदात्त पूर्वरूपेषु शाकल्यस्यैवमाचरेत् ॥

दो ह्रस्व इकारों की प्रश्लिष्ट संधि में पदान्त उदात्त और पदादि अनुदात्त की संधि से सर्वदा स्वरित की निष्पत्ति होती है यथा सुचिऽइव। घृतम् = सुचीव घृतम्

(ख) क्षेप्र स्वरित पाणिनीय व्याकरण की यण सन्धि ही क्षेप सन्धि है। क्षेप्र सन्धि के कारण होने वाला स्वरित क्षेप्र कहलाता है। क्षेप्र सन्धियों में उदात्तपूर्व में होने पर अनुदात्त बाद में होने पर सन्ध्य स्वर स्वरित होता है।

अर्थात् जब क्षेप्र सन्धि में उदात्त विशिष्ट इ या ई तथा उ या ऊ के बाद में कोई असवर्ण स्वर होने पर क्रमशः य और व बन जाता है तब परवर्ती अनुदात्त विशिष्ट स्वर क्षेत्र सज्ञक स्वरित होता है। उदाहरणार्थं नु। इन्द्र = न्विन्द्र।

(ग) अभिनिहितस्वरित पाणिनीय व्याकरण की पूर्वरूप सन्धि' ही अभिनिहित सन्धि है। अभिनिहित सन्धि के कारण होने वाला स्वरित अभिनिहित स्वरित कहलाता है। ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार अभिनिहित सन्धियों में उदात्त पूर्व में होने पर अनुदात्त से की गयी सन्धि का सन्ध्य स्वर स्वरित होता है। अर्थात् जब पूर्ववर्ती उदात्त ए या ओ के साथ परवर्ती अनुदात्त अ का एकीभाव हो जाता है तब सन्ध्य स्वर अभिनिहित स्वरित होता है; . यथा ते। अवर्धन्तु = तैऽवर्धन्तु। .

प्रचय

'प्रचय' शब्द प्र उपसर्ग पूर्वक चि धातु से निष्पन्न हुआ है प्रचय का अर्थ है आधिक्य। पूर्ववती स्वरित के कारण एक से अधिक अनुदात्त प्रचय हो जाते हैं। (जब तक कि कोई उदात्त नहीं आ जाता) इसी अधिक अनुदात्तों के प्रचय हो जाने के कारण ही इसे प्रचय संज्ञा से अभिहित किया जाता।

प्रचय हो जाने पर अनुदात्त उदात्त के समान उच्चरित होता हुआ नीची ध्वनि से उच्चारित होने वाला स्वर अब ऊँची ध्वनि से उच्चारित होने लगता है ध्वनि के इस आधिक्य के कारण भी अनुदात्त स्वर प्रचय कहा जाता है।

स्वरित के बाद में आने वाले अनुदात्तों का 'प्रचय' स्वर हो जाता है। ऐसी अवस्था में वे अनुदात्त उदात्त के समान सुनाई पड़ते हैं, चाहे वे एक हों, दो हों या बहुत हों।
स्वरितादनुदात्तानां परेषां प्रचयः स्वरः। उदात्त श्रुतितां यान्त्येक द्वे वा बहूनि वा ॥

प्रचय स्वर मूलतः अनुदात्त होता है। जब पूर्ववर्ती 'स्वरित स्वर' के प्रभाव से 'अनुदात्त' अनुदात्त के समान उच्चारित न होकर उदात्त के समान उच्चारित होने लगता है तब वह प्रचय कहलाता है। अतः प्रचय कोई स्वतन्त्र स्वर नहीं है।

ऋक प्रातिशाख्य के अनुसार उदात्त या स्वरित पर होने पर प्रचय का उच्चारण उदात्त के समान न होकर अनुदात्त के समान ही होता है। कतिपय आचार्य अन्तिम प्रचय का अनुदात्त उच्चारण करते हैं। कुछ अन्तिम दो प्रचयों का एवं कुछ प्रथम प्रचय को छोड़कर अन्य सभी प्रचयों का अनुदात्त उच्चारण करते हैं, केचित्केकमनेकं वा नियच्छन्त्यन्तोऽक्षरम्। आ वा शेषात्।

प्रचय का यह वैशिष्ट्य है कि इसका उच्चारण उदात्तवत् एवं अनुदात्त वत् दोनों ही कि भाँति परिस्थित्यनुसार होता है। प्रचय भी उदात्त की भाँति अचिह्नित रहता है। अतः ज्ञातव्य है कि स्वरित से परे अचिह्नित स्वर प्रचय होते हैं एवं अनुदात्त के बाद में या स्वरित से पूर्व विना चिह्न वाला स्वर उदात्त होता है। जिस प्रचय के तुरन्त बाद उदात्त होता है उस। (उदात्त पूर्व) प्रचय को अनुदात्त चिह्नित कर दिया जाता है। जैसे स जंनासु इन्द्रः।

कम्प, स्वरित के बाद में उदात्त होने पर पहले वाले उदात्ततर और बाद वाले उदात्त उच्चारणों के मध्य में अनुदात्त का उच्चारण करने में कठिनाई होना स्वाभाविक है क्योंकि स्वरित के प्रथम अंश का उदात्त के रूप में उच्चारण करने के तुरन्त बाद ही अनुदात्त अंश का उच्चारण करने के लिए ध्वनि को नीचे उतरना पड़ता है और परवर्ती उदात्त का उच्चारण करने के लिए ध्यान को पुनः तुरन्त ही ऊपर चढ़ना पड़ता है। ऐसी स्थिति में स्वरित के अनुदात्त अंश का उच्चारण झटके के साथ होता है इस झटके को ही कम्प करते हैं। ऐसी स्थिति सदेव जात्यस्वरित तथा सन्धिज स्वरित के साथ होती है।

जात्योऽभिनिहितश्चैव क्षेत्रः प्रश्लिष्ट एव च। पने स्वराः प्रकम्पन्ते यत्रोच्चस्वरितोदयाः ॥

अर्थात् उदात्त या स्वरित बाद में होने पर जात्य अथवा अभिनिहित, क्षेत्र अथवा प्रश्लिष्ट स्वरित स्वर कम्प को प्राप्त होता है।

यदि यह कम्प हस्त स्वरित वर्ण के अनुदान्त अंश में हो तो कम्प दिखलाने के लिए ह्रस्व स्वरित वर्ण के बाद १ संख्या को लिखते समय उस संख्या के ऊपर ऊपर स्वस्ति का चिह्न (।) एक भी अनुदात्त का चिह्न () लगाया जाता है।

यदि कम्प दीर्घ स्वरित स्वर के अनुदान्त अंश में हो तो कम्प दर्शाने के लिए दीर्घ स्वरित स्वर के बाद ३लिखकर ऊपर स्वस्ति मजा एवं नीचे अनुदान्त का चिह्न लगाया जाता है। अभी३दम्।

क्रमशः चारों प्रकार के स्वरित में कम्प के उदाहरण निम्नवत् देखे जा सकते हैं।

१. जात्य स्वरित, तिष्यः। यथा = तिष्यो३यथा।

२. अभिनिहित स्वरित, दिवः। अस्मे = दिवो३ऽस्मे।

३ क्षेत्र स्वरित, नि। अन्यम् = न्या१न्यम्।

प्रश्लिष्ट स्वरित, अभि। इदम् = अभी३दम्।

ये समस्त उदाहरण उदात्त पर रहने पर होने वाले कम्प के हैं। स्वरित पर रहने कम्प के उदाहरण के रूप में, यः। अहयः = यो३ऽहयः को उद्धृत किया जा सकता है।

निघात

71. वैदिक स्वर प्रक्रिया

सभी वेदों में स्वर प्रक्रिया एक ही प्रकार की है केवल लिपि चिह्न का केवल अन्तर है। डा. नरेश कुमार धीमान

सामान्य वैदिक स्वर प्रक्रिया के अनुसार प्रायः प्रत्येक पद में एक उदात्त स्वर होता है। अनुदात्त पदमेकवर्ज्यम्। किन्तु इसके दो अपवाद पाये जाते हैं, जैसे कुछ पदों में दो उदात्त अक्षर भी पाये जाते हैं जबकि कुछ पद ऐसे भी होते हैं, जिनमें एक भी उदात्त नहीं होता है। सामान्य रूप से एक उदात्त वाले पदों में उदात्त सम्बन्धी नियमों को इस प्रकार देखा जा सकता है

(१) (क्रिया में साधारण) 'तवै' से बने शब्दों में एतुवै में 'ए' और 'वै' दोनों पर उदात्त है।

(२) वे समास से बने शब्द जिनके दोनों पद द्विवचनान्त हों 'मित्रा वरुणा' (त्रा और व पर) बृहस्पति में (बृ और 'प' पर)।

जिन शब्दों पर उदात्त कभी नहीं होता है, वे हैं।

(१) एन, त्व, सम, मा, त्वा, मे, ते, नौ, वाम्, नः वः, ईम् सीम्।

(२) अव्यय च, उ, वा, इव, घ, ह, चित्, भल, समहः स्म, स्विद्।

कुछ शब्द वाक्य या पाद में स्थिति के अनुसार उदात्तरहित होते हैं।

(१) सम्बोधन शब्द. जब पाद के प्रारम्भ में न हो।

(२) मुख्य वाक्य की क्रिया जब वाक्य या पाद के प्रारम्भ में न हो।

(३) 'अस्य' जब वाक्य या पद के प्रारम्भ में न हो और जोर न देता हो।

(४) यथा जब 'इव' के अर्थ में पाद के अन्त में आवे।

संज्ञा शब्दों में उदात्त

(१) असन्त संज्ञा शब्द में नपुंसकलिंग होने पर मूलशब्द पर और पुल्लिङ्ग होने पर 'प्रत्यय' पर उदात्त होता है। जैसे अपः (अ पर उदात्त है) कार्य। अपः (प पर)

क्रियाशील ।

- (२) ईष्ट प्रत्ययान्त में मूलशब्द पर उदात्त होता है । जैसे यजिष्ठा में य पर । जब पहले कोई उपसर्ग आवे तो उपसर्ग पर उदात्त होता है जैसे आगमिष्ठ में आ पर ।
- (३) ईयास् प्रत्ययान्त में मूलशब्द पर जैसे जवीयास् में ज पर । उपसर्ग लगने पर उपसर्ग पर उदात्त होता है, जैसे प्रतिच्यवीयांस में प्र पर ।
- (४) 'मनन्त' में नपुंसकलिंग में मूलशब्द पर जैसे कर्मन् में 'क' पर तथा पुल्लिङ्ग में मन् पर (धर्मन् में 'म' पर) उदात्त होता है ।
- (५) इनन्त में इन् पर उदात्त होता है जैसे अश्विन में 'वि' पर ।
- (६) तमान्त में मूलशब्द पर (अपवाद, पुरुष, उत्तम, शध्वतम) पर संख्यावाची शब्द के साथ तम लगने पर तम के म पर उदात्त होता है । शतुतम । .
- (७) 'मान्त' शब्दों में म पर उदात्त होता है । जैसे अष्टम ।

समासिक पदों में उदात्त

- (१) जिसमें एक ही शब्द की आवृत्ति हो उसमें पहले पद पर उदात्त होता है जैसे अहरहः, द्यविद्यवि ।
- (२) बहुव्रीहि में प्रथम पद पर उदात्त (बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्) होता है जैसे धृतव्रंताय ।
- (३) कर्मधारय में उत्तर पद पर, (प्रथमुजा) किन्तु जब अन्त में त प्रत्यय से बना पद हो या 'ति' से समाप्त होने वाला शब्द हों तो पहले पद पर उदात्त होगा जैसे दुर्हितः, सुधस्तुति ।
- (४) सामान्य तत्पुरुष में अन्तिम पद पर उदात्त होता है जैसे—गोत्रभिद् ।
- (५) द्वन्द्व समास के उत्तरपद पर उदात्त होता है अहोरात्राणि ।

वाक्य में उदात्त

- (१) जब सम्बोधन शब्द वाक्य या पाद के आरम्भ में हो तो उदात्त पहले पर होता है । अन्यथा इस पर उदात्त नहीं होता ।
- (२) मुख्य क्रिया के अतिरिक्त अन्य क्रियाओं पर उदात्त होता है ।
- (३) यदि मुख्य क्रिया वाक्य या पाद के प्रारम्भ में आवे तो उस पर उदात्त होता है ।
- (४) सम्बोधन के तुरन्त बाद क्रिया आवे तो उस पर भी उदात्त होता है । अग्रे जुषस्व ।
- (५) जब क्रिया बलवती हो तो भी उस पर उदात्त होता है भले वह पाद के प्रारम्भ में न हो । प्रायः बलवती क्रिया से पर इत् या चन् निपात का प्रयोग होता है जैसे चक्रताद् इत् ।
- (६) च, चेत्, नेत्, हि, कु, वित् निपातों से युक्त पादों की क्रिया से उदात्त होता है त्वं हि बलदा असिं ।
- (७) यत् या यत् के किसी रूप से प्रारम्भ होने वाले वाक्य या पाद की क्रिया में उदात्त होता है जैसे—य ईङ्घ्रयन्ति ।

उपसर्गों में उदात्त

- (१) मुख्य वाक्य में उपसर्ग पर उदात्त होता है ।
- (२) दो उपसर्ग हों तो दोनों स्वतन्त्र और उदात्तयुक्त होते हैं जैसे उप प्रयाहि ।
- (३) आ के पहले कोई उपसर्ग हो तो 'आ' उदात्त होगा समार्कणोषि ।
- (४) उपवाक्यों में उपसर्ग क्रिया के साथ प्रायः जुड़ा रहता है और उदात्तरहित होता है ।

पद में दो उदात्त

- (१) जिन तत्पुरुष समासों का उत्तरपद पति शब्द होता है उनमें दो उदात्त होते हैं जैसे बृहस्पतिं ।
- (२) अलुक् तत्पुरुष में भी दो उदात्त होते हैं जैसे—अपां नपात् या शुनः शेषं ।
- (३) देवताद्वन्द्व समास में दो उदात्त होते हैं जैसे मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी ।
- (४) तवै से बने शब्दों में दो उदात्त होते हैं जैसे एतवै, अन्वेतवे ।
- (५) असे आदि तुमुन् प्रत्ययार्थ प्रयुक्त चतुर्थी विभक्ति के शब्दों में भी दो उदात्त होते हैं ।

सर्वानुदात्त या उदात्त रहित पद

- (१) यद्वत् से रहित पाद या वाक्य के मध्य की क्रिया (सम्बोधन से परे न रहने पर तथा बलवती न होने पर) प्रायः उदात्त रहित अर्थात् सर्वानुदात्त होती है ।
- (२) पाद या वाक्य के प्रारम्भ में आने वाले सम्बोधन शब्दों के अतिरिक्त अन्यत्र । प्रयुक्त सम्बोधन सर्वानुदात्त होता है ।
- (३) अस्य और यथा पद भी पाद के प्रारम्भ में न रहने पर सर्वानुदात्त होते हैं ।
- (४) सर्वनाम शब्दों के वैकल्पिक रूप तथा एन् सम्, वामः आदि तथा समस्त अव्यय । अनुदात्त होते हैं ।

72. सामवेद एक परिचय

'सामन्' शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्ति अर्थक 'सन्' धातु से 'मन्' प्रत्यय लगाने पर होती है । साम का शाब्दिक अर्थ है वह गीत जिसके द्वारा परमात्मा को पाया जाता है । शबरस्वामी के अनुसार 'विशिष्ट काचित् साम्यो गीतिः सामेत्युच्यते' । अर्थात् मन्त्रों को जब विशिष्ट गान पद्धति से गाया जाता है, तब उसे 'सामन्' कहते हैं । सामवेद का 'ऋत्विक् उद्गाता है ।

सामवेद का देवता आदित्य और आचार्य जैमिनि है । पतञ्जलि जी ने सामवेद की 1000 शाखाएँ बताई ।

शौनक ने चरणव्यूह में 13 शाखाएँ स्वीकारी हैं। सामवेद की शाखाएँ: वर्तमान में 3 शाखाएँ उपलब्ध हैं, 1. कौथुमीय, 2. राणायनीय, 3. जैमिनीय क्रम से सामवेद की शाखाओं के बारे में समझते हैं

1. कौथुमीय शाखा इस शाखा में 1875 मन्त्र हैं। यह सबसे प्रसिद्ध शाखा है। इस शाखा का सबसे अधिक प्रचलन है। 2. राणायनीय शाखा इस शाखा में 1810 मन्त्र हैं। यह महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है। 3. जैमिनीय शाखा इस शाखा में 1687 मन्त्र हैं। इसका प्रचार कर्नाटक में है।

सामवेद की कौथुमीय शाखा का विभाजन: सामवेद की कौथुमीय शाखा के 2 भाग हैं 1. पूर्वार्चिक 2. उत्तरार्चिक।

सामवेद की कौथुमीय शाखा में कुल मन्त्र संख्या 1875 है। पूर्वार्चिक में 650 मन्त्र और उत्तरार्चिक में 1225 मन्त्र हैं। सामवेद की कौथुमीय शाखा में ऋग्वेद से 1554 मन्त्र लिए गए हैं।

सामवेद में मन्त्रों की संख्या

सामवेद में कई मन्त्र पुनरुक्त हैं। पूर्वार्चिक के 267 मन्त्र उत्तरार्चिक में पुनरुक्त हैं। सामवेद के स्वयं के 104 मन्त्रों में भी 5 मन्त्र पुनरुक्त हैं। इस प्रकार देखें तो ऋग्वेद से लिए गए मन्त्र 1504, सामवेद के स्वयं के मन्त्र 99, ऋग्वेद के पुनरुक्त मन्त्र 267 और सामवेद के पुनरुक्त मन्त्र 5 हैं। यदि इन सबका योग करें तो 1504+99+267+5 = 1875 हो जाता है।

सामवेद की कौथुमीय शाखा पूर्वार्चिक पूर्वार्चिक पूर्वार्चिक में 4 काण्ड या पर्व, 6 प्रपाठक या अध्याय और 650 मन्त्र हैं। प्रत्येक प्रपाठक में दो अर्ध या खंड हैं। प्रत्येक खंड में 1 दशति और प्रत्येक दशति में कुछ मन्त्र हैं। दशति शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें मन्त्रों की संख्या 10 रही होगी, किन्तु आज किसी खण्ड में 10 से कम मन्त्र हैं और किसी में ज्यादा। जिस काण्ड या पर्व में जिस देवता का वर्णन है, उसी देवता के नाम पर काण्ड या पर्व का नाम भी है। प्रथम पर्व (काण्ड) का नाम आग्नेय पर्व (काण्ड) है। इसमें अग्नि से सम्बन्धित मन्त्र हैं। इसके अन्तर्गत प्रथम प्रपाठक आता है। इसमें कुल 114 मन्त्र हैं। द्वितीय पर्व (काण्ड) का नाम ऐन्द्र पर्व (काण्ड) है। इसमें इंद्र की स्तुतियाँ की गई हैं। इसके अंतर्गत द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक आता है। इसमें 352 मन्त्र हैं। तृतीय पर्व (काण्ड) का नाम पावमान पर्व (काण्ड) है। इसमें सोम की स्तुति की गई है। इसके अंतर्गत पंचम प्रपाठक आता। इसमें 119 मन्त्र हैं। चतुर्थ पर्व (काण्ड) का नाम अरण्य पर्व (काण्ड) है। इसमें अरण्यगान के ही मन्त्र हैं। इसके देवता इंद्र, अग्नि और सोम हैं। इसमें 55 मन्त्र हैं। इनके अतिरिक्त महानाम्नी आर्चिक भी है। इसके देवता इंद्र हैं और इसमें कुल 10 मन्त्र हैं।

सामवेद की कौथुमीय शाखा उत्तरार्चिक

उत्तरार्चिक उत्तरार्चिक में कुल 9 प्रपाठक, 21 अध्याय, 400 सूक्त और 1225 मन्त्र हैं। प्रथम 5 प्रपाठकों में 2 2 अध्याय हैं, जबकि अन्तिम 4 प्रपाठकों में 3 3 अध्याय हैं। सामवेद में मन्त्रों के समूह की संज्ञा को 'आर्चिक' कहते हैं।

सामवेद का वाङ्मय

ब्राह्मण प्रौढ़, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद्, संहितोपनिषद्, वंश, जैमिनीय I, आरण्यक तलवल्कार और छान्दोग्य I, उपनिषद् छान्दोग्योपनिषद् और केनोपनिषद्।

सामगान के प्रकार (स्थान की दृष्टि से)

सामगान 4 प्रकार के हैं

- 1. ग्रामगान यह गाँव या सार्वजनिक स्थानों पर गाया जाता था।
- 2. आरण्यगान वन और पवित्र स्थानों पर गाया जाता था।
- 3. उहगान उह का अर्थ है 'विचारपूर्वक विन्यास'। यह सोमयाग या धार्मिक स्थलों पर गाया जाता था।
- 4. उह्यगान रहस्यात्मक होने के कारण इसे वन और पवित्र स्थानों पर गाया जाता था।

सामवेद के अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु।

- 1. सामवेद का उपवेद गान्धर्व वेद है।
- 2. सामवेद के गायन करने वाले को सामग कहते हैं।
- 3. सामवेद में कुल 144000 अक्षर हैं।
- 5. सामवेद में मन्त्रों के ऊपर उदात्त स्वर के लिए 1, स्वरित स्वर के लिए 2 और अनुदात्त स्वर के लिए 3 लिखा जाता है।
- 6. सामवेद में 7 स्वर, 3 ग्राम, 21 मूर्छनाएँ और 49 तानों का वर्णन मिलता है।
- 7. सात स्वर इस क्रम में हैं मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षडज, निषाद, धैवत, पंचम।
- 8. 3 ग्राम निम्न हैं 1. मन्द, 2. मध्य 3. तीव्र।
- 9. 7 स्वर* 3 ग्राम मिलकर 21 मूर्छनाएँ बनती हैं।
- 10. 7 स्वर × 7 स्वर मिलकर 49 तानें बनती हैं।
- 11. सामवेद में सर्वाधिक 'गायत्री' व 'प्रगाध' छन्दों का प्रयोग हुआ है।
- 13. ग्रामगान और अरण्यगान पूर्वार्चिक में जबकि उहगान और उह्यगान का प्रयोग उत्तरार्चिक में होता है।

सामवेद का प्रथम मन्त्र निम्न है।

ॐ अग्र आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥

सामवेद स्वर परिचय

सामगान की अपनी विशिष्ट स्वरलिपि है। लोगों में एक भ्रांत धारणा है कि भारतीय संगीत में स्वरलिपि नहीं थी और यह यूरोपीय संगीत का परिदान है। सभी वेदों के सस्वर पाठ के लिए उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के विशिष्ट चिह्न हैं किंतु सामवेद के गान के लिए ऋषियों ने एक पूरी स्वरलिपि तैयार कर ली थी। संसार भर में यह सबसे पुरानी स्वरलिपि तैयार कर ली थी। संसार भर में यह सबमें पुरानी स्वरलिपि है। सुमेर के गान की भी कुछ स्वरलिपि यत्रतत्र खुदी हुई मिलती है। किंतु उसका कोई साहित्य नहीं मिलता। अतः उसके विषय में विशिष्ट रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु साम के सारे मंत्र स्वरलिपि में लिखे मिलते हैं, इसलिए वे आज भी उसी रूप में गाए जा सकते हैं।

आजकल जितने भी सामगान के प्रकाशित ग्रंथ मिलते हैं उनकी स्वरलिपि संख्यात्मक है। किसी साम के पहले अक्षर पर लिखी हुई 1 से 5 के भीतर की जो पहली संख्या होती है वह उस साम के आरंभक स्वर की सूचक होती है। 6 और 7 की संख्या आरम्भ में कभी नहीं दी होती। इसलिए इनके स्वर आरंभक स्वर नहीं होते। हम यह देख चुके हैं कि सामग्राम अवरोही क्रम का था। अतः उसके स्वरों की सूचक संख्याएँ अवरोही क्रम में ही लेनी चाहिए।

प्रायः 1 से 5 के अर्थात् मध्यम से निषाद के भीतर का कोई न कोई आरम्भक स्वर अर्थात् षड्ज स्वर होता है। संख्या के पास का "र" अक्षर दीर्घत्व का द्योतक है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित "आज्यदोहम्" साम के स्वर इस प्रकार होंगे।

2र 2र 2र 2र 3 4र 5, हाउ हाउ हाउ । आ ज्य दो हम् । सऽस सऽस सऽस । सऽ नि ध ऽप, मू२र धर्नं१र दाइ । वा२ऽ 3 अ१ र । सऽ रे ऽ रे रे रे स ऽ नि रे रे, 2 र 3 4 र 5 2 र 3 4 र 5, आ ज्य दो हम् । आ ज्य दो हम्, सऽ नि ध ऽ प स ऽ नि ध ऽ प ति२ पृ३ थि४ व्या५ । स नि ध प ।

इस साम में रे, स, नि, ध, प - ये पाँच स्वर लगे हैं। संख्या के अनुसार भिन्न भिन्न सामों के आरंभक स्वर बदल जाते हैं। आरंभक स्वरों के बदल जाने से भिन्न भिन्न मूर्छनाएँ बनती हैं जो जाति और राग की जननी हैं। सामवेद के काव्य में स्वर, ग्राम और मूर्छना का विकास हो चुका था। सामवेद में ताल तो नहीं था, किंतु लय थी। स्वर, ग्राम, लय और मूर्छना सारे संगीत के आधार हैं। इसलिए सामवेद को संगीत का आधार मानते हैं।

प्रातिशाख्य और शिखा काल में स्वरों के नाम षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद हो गए। ग्राम का क्रम आराही हो गया स्वर के तीनों स्थान मंद्र, मध्य और उत्तम (जिनका पीछे नाम पड़ा मंद्र, मध्य और तार) निर्धारित हो गए। ऋक्प्रातिशाख्य में उपर्युक्त तीनों स्थानों और सातों स्वरों के नाम मिलते हैं।

ऋक् - साम के सम्बन्ध की मीमांसा

ऋग्वेद तथा सामवेद के परस्पर सम्बन्ध की मीमांसा यहाँ अपेक्षित है। वैदिक विद्वानों की यह धारणा है कि सामवेद उपलब्ध ऋचायें ऋग्वेद से ही गान के निमित्त गृहीत की गई हैं, वे कोई स्वतन्त्र ऋचायें नहीं हैं। यह बद्धमूल धारणा नितान्त भ्रान्त है। इसके अनेक कारण हैं-

सामवेद की ऋचाओं में ऋग्वेद की ऋचाओं से अधिकतर आंशिक साम्य है। ऋग्वेद का 'अग्रेयुक्त्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। अरं वहन्ति मन्यवे (6.16.43) सामवेद में 'अग्रे युक्त्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। हरं वहन्त्याशवः' रूप में पठित है। ऋग्वेद का मन्त्रांश 'अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी' (7.81.1) सामवेद में 'अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष् कृणोति सूनरी' रूप धारण करता है। इस आंशिक साम्य के तथा मन्त्र में पादव्यत्यय के अनेक उदाहरण सामवेद में मिलते हैं। यदि ये ऋचायें ऋग्वेद से ही ली गई होती, तो वे उसी रूप में और उसी क्रम में गृहीत होतीं, परन्तु वस्तुस्थिति सभी नहीं है।

यदि ये ऋचायें गायन के लिए ही सामवेद में संगृहीत हैं, तो कवेल उतने ही मन्त्रों का ऋग्वेद से सकलन करना चाहिए था, जितने मन्त्र गान या साम के लिए अपेक्षित होते। इसके विपरीत हम देखते हैं कि सामसंहिता में लगभग 450 ऐसे मन्त्र हैं, जिन पर गान नहीं है। ऐसे गानानपेक्षित मन्त्रों का सकलन सामसंहिता में क्यों किया गया है?

सामसंहिता के मन्त्र ऋग्वेद से ही लिए गये होते, तो उनका रूप ही नहीं, प्रत्युत उनका स्वरनिर्देश भी, तद्वत् होता। ऋग्वेद के मन्त्रों में उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित स्वर पाये जाते हैं, जब सामवेद निर्देश 1, 2, तथा 3 अंकों के द्वारा किया गया है जो 'नारदीशिक्षा' के अनुसार क्रमशः मध्यम, गान्धार और ऋषभ स्वर हैं। ये स्वर अंगुष्ठ, तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियों के मध्यम पर्व पर अंगुष्ठ का स्पर्श करते हुए दिखलाये जाते हैं। साममन्त्रों का उच्चारण ऋक्मन्त्रों के उच्चारण से नितान्त भिन्न होता है।

यदि सामवेद ऋग्वेद के बाद की रचना होती, (जैसा आधुनिक विद्वान् मानते हैं), तो ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर साम का उल्लेख कैसे मिलता? अंगिरसा सामभिः स्तूयमानाः (ऋ. 1.107.2), उद्गातेव शकुने साम गायति (2.43.2), इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते वृहत् (8.98.1) आदि मन्त्रों में सामान्य साम का भी उल्लेख नहीं है, प्रत्युत 'बृहत्साम' जैसे विशिष्ट साम का भी उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण (2.23) का तो स्पष्ट कथन है कि सृष्टि के आरम्भ में ऋक् और साम दोनों का अस्तित्व था (ऋक् च वा इदमग्रे साम चास्ताम्)। इतना ही नहीं, यज्ञ की सम्पन्नता के लिए होता, अध्वर्यु तथा ब्रह्म नामक ऋत्विजों के साथ 'उद्गाता' की भी सत्ता सर्वथा मान्य है। इन चारों ऋत्विजों के उपस्थित रहने पर ही यज्ञ की समाप्ति सिद्ध होती है और 'उद्गाता' का कार्य साम का गायन ही तो है? तब साम की अर्वाचीनता क्यों नहीं विश्वसनीय है। मनु ने स्पष्ट ही लिखा है कि परमेश्वर ने यज्ञसिद्धि के लिए अग्नि, वायु तथा सूर्य से क्रमशः सनातन ऋक् यजुः तथा सामरूप वेदों का दोहन किया (मनुस्मृति 1.23) 'त्रयं ब्रह्म सनातनम्' में वेदों के लिए प्रयुक्त 'सनातन' विशेषण वेदों की नित्यता तथा अनादिता दिखला रहा है। 'दोहन' से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

साम का नामकरण विशिष्ट ऋषियों के नाम किया गया मिलता है, तो क्या वे ऋषि इन सामों के कर्ता नहीं हैं? इसका उत्तर है कि जिस साम से सर्वप्रथम जिस ऋक् को इष्ट प्राप्ति हुई, उस साम का वह ऋषि कहलाता है। ताण्डय ब्राह्मण में इस तथ्य के द्योतक स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध है। "वृषा शोणों 'अभिकनिक्रदत्' (ऋक् 9.97.13) ऋचा पर साम का नाम 'वसिष्ठ' होने का यही कारण है कि बीडु के पुत्र वसिष्ठ ने इस साम से स्तुति करके अनायास स्वर्ग प्राप्त कर लिया (वसिष्ठं भवति, वसिष्ठो वा एतेन वैडवः स्तुत्वा जसा स्वर्ग लोकमपश्यत् ताण्डय ब्राह्म 11.8.13) 'तं वो दस्ममृतीषहं (9.88.1) मन्त्र पर 'नौधस साम' के नामकरण का ऐसा ही कारण अन्यत्र कथित है (ताण्डत् 7.10.10)। फलतः इष्टसिद्धिनिमित्तक होने से ही सामों का ऋषि परक नाम है, उनकी रचना के हेतु नहीं।

इन प्रमाणों पर ध्यान देने से सिद्ध होता है कि सामसंहिता के मन्त्र ऋग्वेद से उधार लिये गये नहीं हैं, प्रत्युत उससे स्वतन्त्र हैं और वे उतने ही प्राचीन हैं जितने ऋग्वेद के

मन्त्र । अतः साम संहिता की स्वतन्त्र सत्ता है, वह ऋक् संहिता पर आधृत नहीं है ।

सामवेद में छन्द

सामवेद के अधिकांश मन्त्र दो छन्दों में हैं गायत्री तथा प्रगाथ (गायत्री और जगती का सम्मिश्रण) । निर्विवाद ये गीत और मन्त्र इन छन्दों में गायन की दृष्टि से ही लिखे थे । गायत्री तथा प्रगाथ दोनों शब्द गा (गै) धातु से बने हैं, जिसका अर्थ है गाना । यद्यपि एक ऋचा विभिन्न गानों में गाई जा सकती है और एक गानो का विविध ऋचाओं के लिए प्रयोग हो सकता है, फिर भी कुछ ऋचाएं कुछ गानों के लिए योनि हैं । इस प्रकार पूर्वार्चिक १८५ ऋचाओं (योनियों) का संग्रह है ।

सामवेद में से आरण्यक गानम्, ग्रामे गानम् (प्रकृति गानम्), उह गानम्, उह्य गानम् (रहस्य गानम्) उपलब्ध है । उह गान की संख्या ९३६ व उह्य गान की संख्या २०५ है । ग्रामे गानम् सामवेद के मन्त्रों की ५८४ ऋचाओं से निर्मित हैं । उह गान सामवेद की ११५९ ऋचाओं से बनाए गए हैं । आरण्यक गानम् साम वेदमन्त्रों की ६५ ऋचाओं से निर्मित हैं । जिनकी संख्या २९४ है । ऋचा योनि (गर्भ) को कहते हैं, जिससे राग का जन्म होता हुआ । सामवेद में कुल गानो की संख्या (९३६+२०५+५८४+२९४=२०१९) है ।

जो गान के अन्त में दी..२४.उत्.३.मा.१५.दु. इसमें दी का अर्थ दीर्घम्, उत्. का अर्थ उद्धम् मा. का अर्थ मात्रा है, अभी चौथे अक्षर का अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है । पांचवा अक्षर वेदगान की गणना का द्यौतक है । श्री लगा है उसका अर्थ क्या होता है । यह भी जानना है ।

उह्य गान (रहस्य गान) में, पर्व नाम, दशति संख्या, गान संख्या, गान नामानि, गानानि, योनिगानानि, ऋषि, छन्दः, और देवता की अनुकृति शङ्कर अद्वैत शोधकेन्द्रम्, श्री जगदगुरु शङ्कराचार्यमहासंस्थानम्, दक्षिणाम्नाय श्री शारदापीठम् शृङ्गेरिः ५७७१३८ । जिसके प्रथम संस्करण सम्पादक, वेदब्रह्मश्री रामनाथदीक्षीतः वाराणसी, व द्वितीय संस्करण सम्पादकः वेदब्रह्मश्री राममूर्तिश्रीती शृङ्गेरिः को प्रमाणित मान करके लिए गए हैं ।

ईश्वर तक पहुंचने के लिए आत्म भावना का योग चाहिए । भाषा को भावपूर्ण बनाने के प्रयास में ही मन्त्र बने । गद्य की अपेक्षा पद्य में भाव संयोग एवं उभार की क्षमता अधिक पाई गई । पद्य को भी जब गान विद्या से जोड़ा गया तो भावना का योग अधिक पूर्णता से खुला ।

सामवेद मूर्धन्यों की अवहेलना के कारण उसकी इतनी बड़ी दुरवस्था आजकल उपस्थित है कि उसके मौलिक सिद्धांतों को समझना एक समस्या हो गई है । साम गान की पद्धति का ज्ञान उसी तरह दुरूह है । एक तो यों ही साम के जानने वाले कम है, उस पर साम गान को ठीक स्वर में गाने वालों की संख्या तो अँगुलियों में गिनने लायक है । यदि गायक के गले में लोच हो और वह उचित मूर्छना, आरोह, अवरोह का विचार कर साम गान करे, तो मन्त्रार्थ न जानने पर भी भावों की दिव्य अनुभूति हुए बिना नहीं रहती । नारद शिक्षा के अनुसार साम के स्वर मंडल इतने हैं **७ स्वर, ३ ग्राम, २१ मूर्छना, ४९ तान** । साम गानों में ये ही सात तक के अंक तत्तत् स्वरों के स्वरूप को सूचित करने के लिए लिखे जाते हैं । सामयोनि मंत्रों के ऊपर दिये गये अंकों की व्यवस्था दूसरे प्रकार की होती है । सामयोनि मंत्रों के सामगानों के रूप में ढालने पर अनेक गायन अनुसार शाब्दिक परिवर्तन किये जाते हैं । इन्हें साम विकार कहते हैं । जिनकी संख्या ६ है ।

सामविकार

मन्त्र को गान का रूप देने के लिए उसमें कुछ परिवर्तन किए जाते हैं, उन्हीं परिवर्तनों को साम विकार कहते हैं । ये कुल 6 हैं ।

1. विकार 2. विश्लेषण 3. विकर्षण 4. अभ्यास 5. विराम 6. स्तोभ ।

क्रम से सामविकारों को समझते हैं ।

1. विकार जहाँ शब्द के उच्चारण में परिवर्तन कर दिया जाता है । जैसे अग्नि के स्थान पर ओग्राइ ।
2. विश्लेषण जहाँ एक ही शब्द को पृथक् पृथक् करके बोला जाता है । जैसे 'वीतये' के स्थान पर 'वोयि तोयायि ।
3. विकर्षण जहाँ एक स्वर का लम्बे समय के लिए उच्चारण किया जाता है । जैसे 'आयाहि' के स्थान पर आयाही..3.. ।
4. अभ्यास जहाँ किसी पद का बार बार उच्चारण किया जाता है । जैसे 'तोयायि' को दो बार बोला जाता है । जैसे तोयायि तोयायि ।
5. विराम जहाँ सुविधा के लिए बीच में रुका जाता है । जैसे 'हव्यदातये' में द पर रुका जाता है ।
6. स्तोभ जहाँ कुछ अतिरिक्त पदों को जोड़ दिया जाता है । जैसे हो, ओ होवा, हाउआ, हावु, रायि आदि ।

साम गायन की पद्धति बहुत कठिन है । उसकी ठीक ठीक जानकारी हो सके इसके लिए बहुत सूक्ष्म अध्ययन अपेक्षित है । साधारण ज्ञान के लिए यह ज्ञान लेना काफी है कि साम गान के पाँच भाग होते हैं ।

सामवेद में सामगान के मन्त्रों के भाग

सामवेद में सामगान के मन्त्रों के 5 भाग हैं

1. प्रस्ताव 2. उद्गीथ 3. प्रतिहार 4 उपद्रव 5. निधन ।
1. प्रस्ताव इसका गान 'प्रस्तोता' नामक ऋत्विक् करता है । यह 'हूँ ओग्राइ' से प्रारम्भ करता है ।
2. उद्गीथ इसे सामवेद का प्रधान ऋत्विक् 'उद्गाता' गाता है । यह 'ॐ' से प्रारम्भ करता है ।
3. प्रतिहार इसका गान 'प्रतिहर्ता' नामक ऋत्विक् करता है । यह 2 मन्त्रों को जोड़ने वाली कड़ी है । अन्त में ॐ' बोला जाता है ।
4. उपद्रव इसका गान 'उद्गाता' ही करता है ।
5. निधन-जिसमें मंत्र के दो पद्यांश या ओम् रहता है । इनका गायन तीनों ऋत्विज, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता एक साथ मिलकर करते हैं ।
उदाहरण के लिए सामवेद का प्रथम मंत्र लें अग्र आया हि वीतये गृणानो हव्यदातये नि होता सत्सि बर्हिषि ॥

सामवेद सामगान में मन्त्र के भाग

इसके ऊपर जिस साम का गायन किया जायेगा, उसके पाँचो अंग इस प्रकार होंगे।

1. हुं ओग्राइ (प्रस्ताव)
2. ओ३म् आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये (उद्गीथ)
3. नि होता सत्सि बर्हिषि ओ३म् (प्रतिहार) । इसी प्रतिहार के दो भेद होंगे, जो दो प्रकार से गाये जायेंगे।
4. निहोता सत्सि बर्हिषि (उपद्रव)
5. बर्हिषि ओ३म् (निधन)

सामगान

आरोह एवं अवरोह से युक्त मंत्रों का गान साम कहलाता है। साम से सम्बद्ध वेद सामवेद कहलाता है। वस्तुतः सामवेद में ऋग्वेद की उन ऋचाओं का संकलन है जो गान के योग्य समझी गयी थीं। ऋचाओं का गान ही सामवेद का मुख्य उद्देश्य माना जाता है। सामवेद मुख्यतः उपासना से सम्बद्ध है, सोमयाग में आवाहन के योग्य देवताओं की स्तुतियाँ इसमें प्राप्त होती है। यज्ञ सम्पादन काल में उद्गाता इन मंत्रों का गान करता था। संपूर्ण सामवेद में सोमरस, सोमदेवता, सोमयाग, सोमपान का महत्व अंकित है इसलिए इसे सोमप्रधान वेद भी कहा जाता है। सामगान की पृथक् परंपराओं के कारण सामवेद की एक सहस्र हजार शाखाओं का उल्लेख महाभाष्य में प्राप्त होता है सहस्रवर्त्ता सामवेदः। सम्प्रति सामवेद की तीन शाखायें उपलब्ध हैं कौथुमीय, राणायनीय, जैमिनीय।

सामगान की स्वरलिपि

भारतीय संगीत भी देखें। सामगान की अपनी विशिष्ट स्वरलिपि नोटेशन है। लोगों में एक भ्रांत धारणा है कि भारतीय संगीत में स्वरलिपि नहीं थी और यह यूरोपीय संगीत का परिदान है। सभी वेदों के सस्वर पाठ के लिए उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के विशिष्ट चिह्न हैं किंतु सामवेद के गान के लिए ऋषियों ने एक पूरी स्वरलिपि तैयार कर ली थी। संसाभर में यह सबसे पुरानी स्वरलिपि तैयार कर ली थी। संसाभर में यह सबसे पुरानी स्वरलिपि है। सुमेर के गान की भी कुछ स्वरलिपि यत्रतत्र खुदी हुई मिलती है। किंतु उसका कोई साहित्य नहीं मिलता। अतः उसके विषय में विशिष्ट रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु साम के सारे मंत्र स्वरलिपि में लिखे मिलते हैं, इसलिए वे आज भी उसी रूप में गाए जा सकते हैं। आजकल जितने भी सामगान के प्रकाशित ग्रंथ मिलते हैं उनकी स्वरलिपि संख्यात्मक है। किसी साम के पहले अक्षर पर लिखी हुई 1 से 5 के भीतर की जो पहली संख्या होती है वह उस साम के आरंभक स्वर की सूचक होती है। 6 और 7 की संख्या आरंभ में कभी नहीं दी होती। इसलिए इनके स्वर आरंभक स्वर नहीं होते। हम यह देख चुके हैं कि सामग्राम अवरोही क्रम का था। अतः उसके स्वरों की सूचक संख्याएँ अवरोही क्रम में ही लेनी चाहिए। प्रायः 1 से 5 के अर्थात् मध्यम से निषाद के भीतर का कोई न कोई आरंभक स्वर अर्थात् षड्ज स्वर होता है। संख्या के पास का "र" अक्षर दीर्घत्व का द्योतक है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित "आज्यदोहम्" साम के स्वर इस प्रकार होंगे: 2र 3 4र 5 हाउ हाउ हाउ। आ ज्य दो हम्। सऽस सऽस। सऽ नि ध ऽप मू 2र धानं 1र दाइ। वा 2 5 3 अ 1 र। सऽ रे ऽ रे रे रे सऽ नि रे रे 2 र 3 4 र 5 2 र 3 4 र 5 आ ज्य दो हम्। आ ज्य दो हम् सऽ नि ध ऽ प सऽ नि ध ऽ प ति 2 पृ 3 थि 4 व्याः 5। स नि ध प इस साम में रे, स, नि, ध, प ये पाँच स्वर लगे हैं। संख्या के अनुसार भिन्न भिन्न सामों के आरंभक स्वर बदल जाते हैं। आरंभक स्वरों के बदल जाने से भिन्न भिन्न मूर्छनाएँ बनती हैं जो जाति और राग की जननी हैं। सामवेद के काव्य में स्वर, ग्राम और मूर्छना का विकास हो चुका था। सामवेद में ताल तो नहीं था, किंतु लय थी। स्वर, ग्राम, लय और मूर्छना सारे संगीत के आधार हैं। इसलिए सामवेद को संगीत का आधार मानते हैं। प्रातिशाख्य और शिखा काल में स्वरों के नाम षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद हो गए। ग्राम का क्रम आराही हो गया: स्वर के तीनों स्थान मंद्र, मध्य और उत्तम जिनका पीछे नाम पड़ा मंद्र, मध्य और तार निर्धारित हो गए। ऋक्प्रातिशाख्य में उपर्युक्त तीनों स्थानों और सातों स्वरों के नाम मिलते हैं।